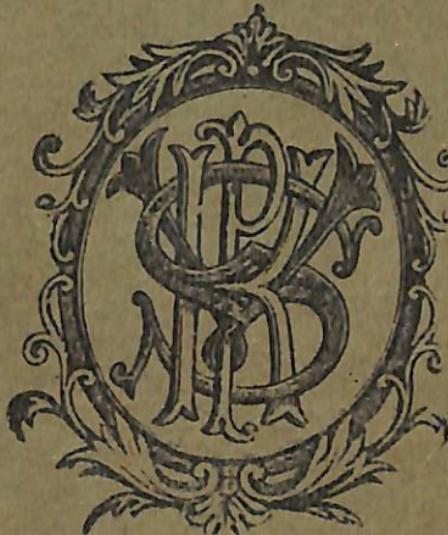


श्रीगणेशाय नमः ।

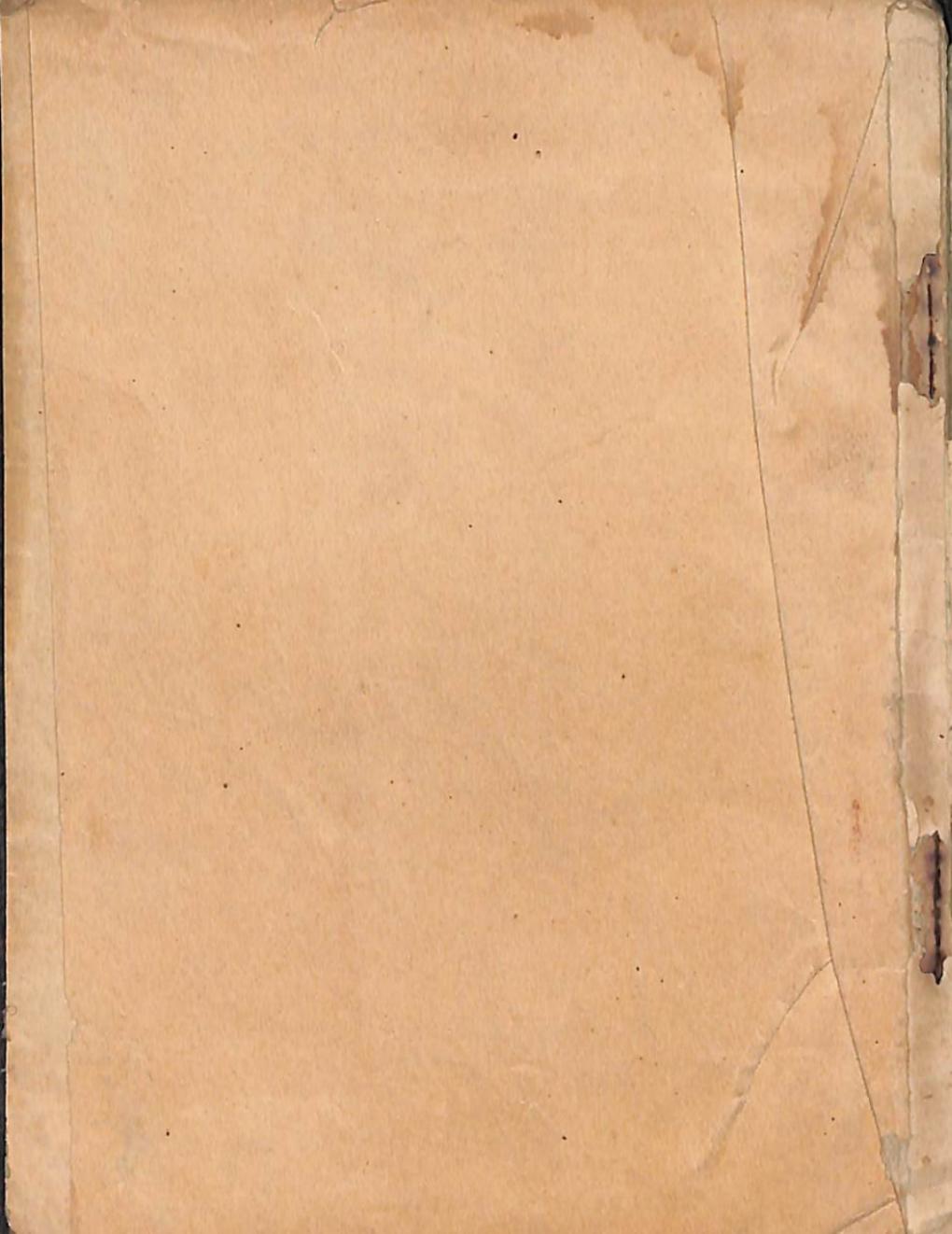
# आत्मवोधः ।

( श्रीशङ्कराचार्यविरचितो वेदान्तग्रन्थः )



खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्, प्रेस-मुंबई.



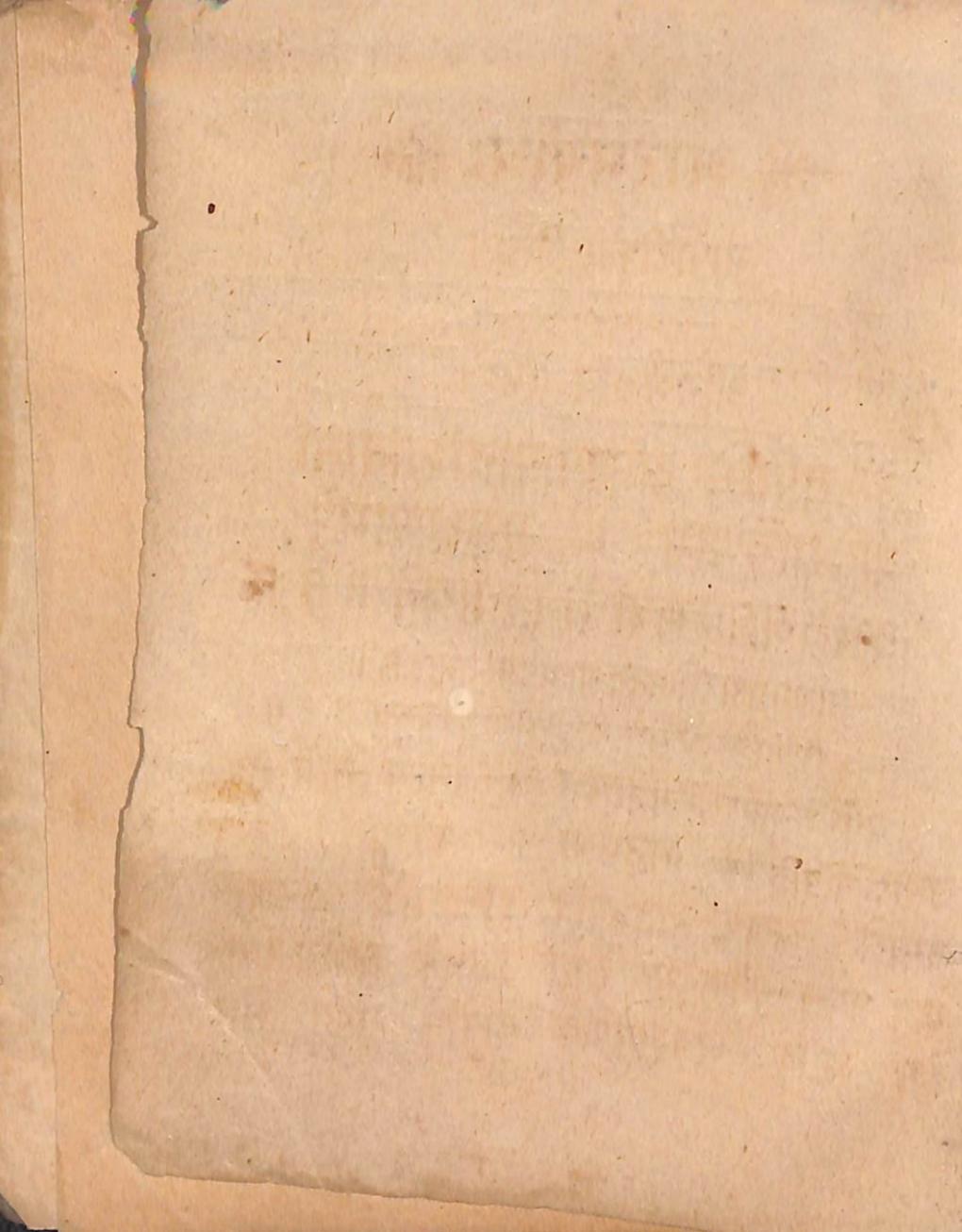
# भूमिका ।



एतदात्मबोधनामकप्रकरणम्परमपूज्यवेदान्तशास्त्राचार्यश्रीमच्छंकराचार्यप्रणीतम् अस्य चात्मबोधसाधकत्वेन संसारविच्छेदजनकतया मुमुक्षुपयोगितास्तीति सर्वजनप्रसिद्धम् आत्मबोधश्च धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्विधपुरुषार्थान्तर्गतमोक्षसाधकः सचातिदुरुहबृहद्देवांतप्रकरणौ श्विरसाध्योऽतः श्रीमदाचार्यैः मुखत आत्मबुद्ध्या एतलघुप्रकरणन्विरमायि एतस्यापि भाषारसिकसाधारण्येन प्रसिद्धिमीहमानैः श्रीमुंबापूः स्थश्रीकृष्णदासात्मजखेमराजश्रेष्ठिभिर्भाषोद्घृतयेऽहमयोजि-मया चैतयथामति भाषायामुद्धृत्य विच्चरणयोरप्यत इति शम् ॥

लँखग्रामनिवासी—काशीस्थराजकीयप्रधानपाठ-  
शालापरीक्षोन्तर्णः,

पं० मिहिरचन्द्रशर्मा.



॥ श्रीः ॥

# ॐ आत्मबोधः ३

भाषार्टीकासहितः ।

१५ द्व

श्रीगणेशाय नमः ।

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां  
वीतरागिणाम् ॥ मुमुक्षुणामपे-  
क्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

नत्वा ब्रह्म चिदानन्दं भाषायामात्मबुद्ध्ये ॥

मया मिहिरचंद्रेण आत्मबोधो वितन्यते ॥ १ ॥

भा०—कृच्छ्रचांद्रायण और नित्य नैमित्तिक  
उपासनाआदि के अनुष्ठान ( करना ) रूप  
तपोंसे अथवा—नेत्रआदि इन्द्रियोंके निग्रह-  
रूप तपसे—क्षीण भये हैं पाप जिनके अर्थात् राग-  
द्वेष आदि अंतःकरणके दोषोंसे रहित और

शान्त—अर्थात् क्षोभरहित और वीतराग अर्थात्  
 इसलोक और परलोकके भोगोंकी इच्छासे शून्य  
 जो मुमुक्षु—पुरुष है—अर्थात् जिनको जन्म—जरा—  
 मरण—संसाररूप व्रान्थिके छेदन करनेकी अभि-  
 लापा है उन मुमुक्षु पुरुषोंको है अपेक्षा जिसकी  
 ऐसा यह आत्मबोधप्रकरण विस्तारसे वर्णन  
 करते हैं—अर्थात् जिससे आत्माका ज्ञान हो ऐसा  
 प्रकरण लिखते हैं ॥ १ ॥

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मो-  
 क्षैकसाधनम् ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञा-  
 नं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥ २ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि तप जप योग आ-  
 दिसे—मोक्ष हो सकता है तो आत्मज्ञानको मोक्षका  
 साधन कैसे कहते हो—सो ठीक नहीं—क्योंकि—  
 अपने स्वरूपभूत जो आत्मा—उसका बोधही  
 मोक्षका कारण श्रुतियोंसे सिद्ध है और कर्म

उपासना तो अन्तःकरणके शोधक हैं—इससे—  
 आत्मबोधको मोक्षका साधन होनेमें—दृष्टान्त  
 कहते हैं कि जैसे एक अश्रिही—पाकका—साक्षात्  
 कारण है—इसीप्रकार अन्यसाधनोंसे अर्थात् जप-  
 तप—मंत्र आदि नानाप्रकारके कर्मोंकी अपेक्षासे  
 बोध—मोक्षका एकही असाधारण साधन है—इससे  
 ज्ञानके विना—मोक्ष सिद्ध नहीं होता—तात्पर्य यह है  
 कि जैसे जगतमें—पाकके काष्ठ अन्न—जल—आदि  
 सहकारि कारण हैं—इसीप्रकार परम्परासे जप तप  
 आदिभी मोक्षके सहकारी कारण हैं—साक्षात्  
 कारण नहीं—सोई—इन श्रुतियोंमें लिखा है कि  
 ज्ञानसेही मोक्ष होता है—ज्ञानके विना मोक्ष नहीं  
 होता—प्रकाशरूप ब्रह्मको जानकर—सब पौशों—  
 [ बंधन ] की हानि होती है—इससे—ज्ञानके विना  
 मोक्ष सिद्ध नहीं होता—यह सिद्धान्त है ॥ २ ॥

( १ ) ज्ञानादेव तु कैवल्यम्—ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।

( २ ) ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः ।

अविरोधितया कर्म नाविद्या । वि-  
निवर्तयेत् ॥ विद्या अविद्यां निह-  
न्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि विचित्र शक्तिवाले  
कर्मोंके ही द्वारा जनकआदि सिद्धिको प्राप्त हुए  
इससे—कर्मोंके द्वारा अज्ञानका नाश होनेसे ही  
मुक्ति हो जायगी—ज्ञानसे अज्ञानका नाश क्यों  
मानते हो—सो ठीक नहीं—क्योंकि जो पदार्थ  
जिसका विरोधी नहीं होता वह उसके नष्ट करनेमें  
समर्थभी नहीं होता—इससे अज्ञानके अविरोधी कर्म  
अज्ञानको नष्ट नहीं कर सकते—और कर्मसे ही जनक  
आदि संसिद्धिको प्राप्त भये—वहाँ सांसाद्धि शब्दसे  
अन्तःकरणकी गुद्धि लेते हैं मुक्ति नहीं—इस  
बातको—दृष्टान्तसे—स्पष्ट करते हैं कि—अज्ञानके  
अविरोधि होनेसे कर्म अविद्याको निवृत्त नहीं कर

सत्ता—क्योंकि ये दोनों जडपदार्थ हैं—इससे-मैं शुद्ध बोध-मुक्तस्वरूप ब्रह्म हूँ—इसप्रकारका जो विद्यारूप ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका ज्ञान है—वही-मैं मनुष्य हूँ—मुखी हूँ—दुःखी हूँ—इत्यादि अविद्यारूप अज्ञानका इसप्रकार निवर्तक है जैसे-सूर्यआदिका प्रकाशरूप तेज अन्धकारका निवर्तक होता है—तिससे आत्मज्ञानके प्रकाशकालमेंही सम्पूर्ण अज्ञानका नाश होजाता है ॥ ३ ॥

परिच्छन्न इवाज्ञानात्माशे सति  
केवलः ॥ स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा  
मेघापायेऽशुमानिव ॥ ४ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि—आत्मा प्रतिशरीर-  
में परिच्छन्न है—अर्थात् जन्मसेही-नाशवान्  
प्रतीत होता है तो जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे  
अज्ञानकी निवृत्ति कैसी बनसत्ती है—सो ठीक नहीं  
क्योंकि, अज्ञानसे यद्यपि आत्मा परिच्छन्नके

समान प्रतीत होता है तथापि अज्ञानके नाश होते ही अपरिच्छन्नके समान स्वयम्प्रकाशरूप होजाता है—इस बातको—दृष्टान्तसे—स्पष्ट करते हैं कि—सर्वत्र व्यापकरूप अद्वितीय आत्मा—अज्ञानसे कलिपत देव मनुष्य आदि—शरीरोंके अध्यास ( भ्रम ) से परिच्छन्न ( आच्छादित ) के समान—प्रतीत होता है—और जब—तत्त्वमासि—आदि महावाक्योंके द्वारा—आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान हो जाता है—तब अज्ञानके किये—मिथ्या अध्यासरूप आरोपका नाश—होनेसे—आत्मा केवल—अर्थात् सजातीय—विजातीय—स्वगत आदि तीनों भेदोंसे रहित—स्वप्रकाश ब्रह्मरूप प्रतीत इस प्रकार होताहै जैसे आवरणाल्प—मेघोंका नाश होनेपर—प्रकाशरूप सूर्य प्रतीत होता है इससे यह सिद्ध है—अज्ञानके नाश होते ही—आत्मा—स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ४ ॥

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्वि  
निर्मलम् ॥ कृत्वा ज्ञानं स्वयं  
नश्येज्जलं करेणुवत् ॥ ५ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि अज्ञानके नाशसे  
केवल ब्रह्मरूप आत्माका होना असम्भव है—क्यों  
कि—अज्ञानके नाश करनेवाली जो वृत्ति हैं—उन-  
के ज्ञानसे—द्वैतकी प्राप्ति होयगी ब्रह्मज्ञानकी नहीं  
सो ठीक नहीं—यद्यपि—जीवात्मा अज्ञानसे मलिन  
है तथापि वास्तवमें—शुद्ध—है इस बातको दृष्टान्त-  
से स्पष्ट करते हैं—कि कर्ता भोक्ता सच्चिदानन्द-  
स्वरूप आत्मा—यद्यपि अज्ञानसे—अपनेको कर्ता  
भोक्ता जीवरूप भ्रमके द्वारा मानता है; इससे अज्ञा-  
नसे—मलिन भी जीव—ज्ञानके अभ्याससे—निर्मल  
है, अर्थात्—कर्ता—भोक्ता से भिन्न—सच्चिदानन्द—  
कूटस्थ साक्षीरूप—ब्रह्म है—इस पूर्वोक्त ज्ञानाकार

जो वृत्ति हैं वे ज्ञानको उत्पन्न करके इस प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे कतकरेणु निर्मली वृटि जल-को निर्मल करके आप भी नष्ट हो जाती है इससे ज्ञानके अभ्याससे जीवात्माके निर्मल होनेमें कुछ भी संशय नहीं है. ॥ ६ ॥

संसारः स्वप्रतुल्यो हि रागद्रेषा-  
दिसंकुलः ॥ स्वकाले सत्यवद्धा-  
ति प्रबोधेऽसत्यवद्धवेत् ॥ ६ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि साक्षात् प्रत्यक्षरूप-  
से जब संसार सत्य प्रतीत होता है तो आत्मा  
की केवलरूपताके ज्ञानसे अद्वैत ब्रह्मज्ञान कैसे  
हो सक्ता है. सो ठीक नहीं. क्योंकि, मिथ्या जगत्  
से आत्माकी अद्वैततामें हानि नहीं होसकती इसी  
बातको स्वप्रके दृष्टिसे सिद्धकरते हैं कि रागद्रेष  
आदिसे युक्त जो स्वप्रके तुल्य संसार है वह

निद्राके समयमें स्वप्नके तुल्य जो अपनी स्थिति है  
उसके समयमें सत्यके समान यद्यपि प्रतीत होता  
है तथापि प्रबोधके होनेपर अर्थात् आत्मा और  
ब्रह्मकी एकताका जो ज्ञान उसके अनंतर क्षणमें  
ही असत्य ( मिथ्या ) के समान हो जाता है इसी  
से मिथ्याभूत जगतसे आत्माकी अद्वैततामें कोई  
हानि नहीं है ॥ ६ ॥

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्ति-  
का रजतं यथा ॥ यावन्न ज्ञायते  
ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्ययम् ॥ ७ ॥

भा०—जगत्के अधिष्ठान कूटस्थ साक्षीरूप  
आत्माका जबतक ज्ञान नहीं होता है तबतक ही  
संसार सत्यके समान प्रतीत होता है इस बातको  
दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे जबतक नीलपृष्ठ  
त्रिकोणाकारशुक्तिका ज्ञान नहीं होता तबतक

ही शुक्ति ( सीपी ) का रजत ( चांदी ) सत्यके समान प्रतीत होता है तिसी प्रकार जबतक सबके अधिष्ठान अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान नहीं होता है तबतकहीं जगत् सत्य प्रतीत होता है और ब्रह्मज्ञानके होतेही शुक्ति रजतके समान मिथ्या प्रतीत होने लगतीहै ॥ ७ ॥

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ  
प्रकल्पिताः ॥ व्यक्तयो विविधाः  
सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

भा०-तिससे संपूर्ण जगत् ब्रह्ममें कल्पित है इस बातको दृष्टांतसे दृढ करते हैं कि, सत् चित् आत्मा स्वरूप और अनुस्यूत अर्थात् जैसे सूत्रमें मणि और मणिमें सूत्र अनुगत हैं इस प्रकार ओत प्रोत और नित्य और व्यापक ( चरचरमें स्थित ) और सबके उपादान कारणरूप ब्रह्ममें

नाना प्रकारकी जो देव, मनुष्य, पशु, कीटआदि  
व्यक्ति हैं अर्थात् मूर्तिमान् नामरूपात्मक जगत्  
है वे सब इसप्रकार कल्पित हैं जैसे सुवर्णमें कटक,  
कुण्डल आदि कल्पनामात्र हैं वस्तुतः सुवर्णही  
सत्य है—इससे नामरूपात्मक जगत् मिथ्यारूप  
है और शुद्धरूप आत्मा सत्य है इसमें कोई संदेह  
नहीं है ॥ ८ ॥

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपा-  
धिगतो विभुः ॥ तद्देदाद्विन्नव-  
द्वाति तन्नाशो सति केवलः ॥ ९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, प्रपञ्च मिथ्याभी है  
और जीवभेद सत्य है तो प्रपञ्चके अधिष्ठान-  
रूप परमात्मामें सत्यता और अद्वितीयरूपता  
कैसे प्रतीत होसकती है सो ठीक नहीं क्योंकि  
वास्तवमें तो आत्मा अद्वितीय है और भेद-

कलिपत है इस बातकोही दृष्टिंतसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे व्यापकरूप आकाश घट मठ आदि उपाधियोंमें प्रविष्ट होकर तिस २ उपाधिके भेदसे घटाकाश मठाकाशरूप प्रतीत होताहै इसी प्रकार संपूर्ण इंद्रियों ( अंतःकरण आदि ) का ईश्वर [ प्रेरक ] विभु नाना प्रकारकी जो देह आदि उपाधि हैं उनमें प्रविष्ट हुआ उन उपाधियोंके भेदसे भिन्न २ प्रतीत होताहै और उपाधियोंके नाश होनेपर केवल [ एक ] ब्रह्मरूप प्रतीत होताहै ॥ ९ ॥

नानोपाधिवशादेव जातिनामा-  
श्रमादयः ॥ आत्मन्यारोपिता-  
स्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ १० ॥

भा०—कदाचित् कहो कि यदि मैं ब्राह्मण-ब्रह्म-चारी-संन्यासी-हूं इत्यादि जाति वर्ण आश्रम-आदि

नाना प्रकारके धर्मोंसे युक्त आत्मा प्रतीत होताहै  
 तो असंग कैसे कहतेहो सो ठीक नहीं—क्योंकि—  
 जाति—वर्ण—आश्रम—आदि धर्म असंग आत्मामें  
 कलिपत हैं—वास्तवमें नहीं—इस बातका दृष्टांतसे  
 वर्णन करते हैं कि—पूर्वोक्त नाना प्रकारकी देह  
 आदि उपाधियोंकी महिमासेही असंग आत्माके  
 विषे—जाति—नाम—आश्रम आदि—इसप्रकार आरो-  
 पित हैं—अर्थात् भ्रमसे प्रतीत होते हैं—जैसे—जलके  
 विषे—रस—(कटु—कषाय—लवण आदि) और—रक्त  
 पीत श्याम आदि रंग—प्रतीत होते हैं—अर्थात्—तिस  
 तिस—रस रंग—की एकतासे जलकाभी वही रंग  
 प्रतीत होताहै—इसी प्रकार जातिआदिकोंके संग—  
 एकतासे आत्मामें भी भ्रमसे जाति—वर्ण—प्रतीत  
 होते हैं. वस्तुतः आत्मामेंभी जातिआदि कोईभी  
 धर्म नहीं है ॥ १० ॥

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम् ॥ शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ३१ ॥

भा०—अब अविद्यासे कलिपत उपाधियोंके स्वरूपको कहते हैं कि, पंचीकरण किये-जो पृथिवी-जल-तेज-वायु-आकाश-पांच महाभूत हैं—जगत्के परिणामी उपादानरूप उनसे है—उत्पत्ति जिसकी ऐसा जो प्रारब्धकर्मसे संचित ( रचित ) स्थूल शरीर है वह आत्माके सुख दुःखोंका जो भोग उसका आयतन ( स्थान ) काहता है ॥ ३१ ॥

पंचप्राणमनोबुद्धिदर्शोद्दियसमन्वितम् ॥ अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥ ३२ ॥

भा०—अब सूक्ष्म शरीररूप उपाधिको कहतेहैं कि-प्राण-अपान-उदान-व्यान-समान-और संकल्प

विकल्परूप अन्तःकरणके-वृत्ति है नाम जिसका  
ऐसा मन, और निश्चयात्मक अंतःकरण-  
की वृत्तिरूप बुद्धि, और श्रोत्र, त्वचा,  
चक्षु, जिह्वा, ब्राण ये पांच ज्ञानेंद्रिय और वाणी,  
हस्त, पाद, गुदा, लिंग, ये पांच कर्मेंद्रिय—इन  
सत्रह तत्त्वोंसे युक्त, और पञ्चीकरण नहीं किये  
पांच सूक्ष्म महाभूतोंसे उत्पन्न, जो सूक्ष्म शरीर  
है वह आत्माके भोगोंका साधन [ हेतु ] है—यह  
आत्माकी तीसरी उपाधि है ॥ १२ ॥

अनाद्यविद्यानिर्वच्या कारणो-  
पाधिरुच्यते ॥ उपाधित्रितयाद-  
वन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥

भा०—अब कारणशरीररूप तीसरी उपाधि-  
को कहते हैं कि अनादि जो सत्य असत्य कहनेके  
अयोग्य और जगत्की उत्पत्ति करनेमें समर्थ

माया है—यदि वह माया सत्य है तो ज्ञानसे नष्ट  
 न होगी और असत्य है तो उससे जगतकी उत्प-  
 ति न होगी इससे सत्य असत्य रूपसे अनिर्वच-  
 नीया है ऐसी जो समाष्टि व्यष्टिरूप जगत्—स्थूल  
 सूक्ष्मरूप शरीरआदिका उपादान कारण माया  
 है वह कारण उपाधि कहाती है इन—पूर्वोक्त  
 स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीररूप उपाधियोंसे  
 भिन्न आत्माका निश्चय करै अर्थात् इन तीनों  
 उपाधियोंके साक्षीरूप आत्माको इस प्रकार भिन्न  
 समझे जैसे घटआदिका दृष्टा घटआदिसे भिन्न  
 होता है ॥ १३ ॥

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव  
 स्थितः ॥ शुद्धात्मा नीलवेण्णादि-  
 योगेन स्फटिको यथा ॥ १४ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि पूर्वोक्त तीन उपाधि-

यों से भिन्न सच्चिदानन्दरूप आत्मा नहीं हो सकता क्योंकि आत्मा प्रत्यक्षमें अन्नमयआदि कोशरूप इस श्रुतिसे प्रतीत होता है कि वह यह पुरुष अन्नरसमय है इससे कोशही आत्मा है कोशों से भिन्न नहीं सोठीक नहीं क्योंकि आत्मा जो अन्नमयआदि कोशरूप प्रतीत होता है वह देह और आत्माकी एकताके भ्रमसे हैं-वास्तवमें आत्मा भिन्न है इस बातको वृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि, अन्नके रससे उत्पन्न-अन्नसे बढा-पृथिवीरूप अन्नमें लीन, वह अन्नमयकोश और पांच कर्मेंद्रिय और पांच प्राणरूप प्राणमयकोश-और पांच ज्ञानेंद्रिय और मनरूप मनोमयकोश-और पांच ज्ञानेंद्रिय और बुद्धिरूप विज्ञानमयकोश-और मलिन सत्त्व गुण है प्रधान जिसमें ऐसी जो कारण शरीरभूत-प्रिय मोद आदि वृत्तियोंसहित अवि�-

व्या है वह आनंदमयकोश होता है—इन पाँचों को-  
 शोंके योगसे अर्थात् कोशोंकी महिमासे आ-  
 च्छादित है सत् चित् आनंदरूप जिसका ऐसा  
 आत्मा तिस २ कोशरूपके समान स्थित है  
 अर्थात् कोशोंके संग एकताके भ्रमसे अन्नमय  
 आदिरूप प्रतीत होता है और आदिपदके देने-  
 से स्थूल, कृश, और कुधा, तृष्णा आदि धर्मवान्  
 भी भ्रमसे ही प्रतीत होता है वास्तवमें तो आत्मा  
 शुद्धचेतनरूप है तथापि जिस २ कोशके संग  
 आत्माकी एकताका भ्रम होता है उस २ कोश  
 रूपही आत्मा प्रतीत होता है जैसे मैं मनुष्य  
 मोटा हूं—यह अन्नमय—मैं भूखा प्यासा हूं—यह प्रा-  
 णमय—देह घर पुत्र आदि मेरे हैं—यह मनोमय—मैं  
 ज्ञानी हूं—मूर्ख हूं—यह विज्ञानमय—मैं सुखी हूं यह  
 आनंदमय—कोशरूप प्रतीत होता है इस प्रकार  
 कोशोंके जो मिथ्या धर्म हैं वे आत्मामें भ्रमसे

प्रतीत होते हैं—स्वभावसे आत्मामें कोईभी धर्म नहीं है—और पूर्वोक्त श्रुतिमें जो आत्माको अन्नर-समय कहा है वह सूक्ष्म ब्रह्मरूप वस्तुके ज्ञानार्थ है क्योंकि आत्मा एक है और कोश अनेक हैं—और कोश उत्पन्न और विनाशी हैं आत्मा अविनाशी है और—कोश धर्मी है आत्मा धर्मरहित है इन कारणोंसे आत्मा कोशरूप कैसे हो सकता है और आत्माकी जो तिस २ कोशरूप प्रतीति है वह इस प्रकार भ्रमसे है जैसे स्वभावसे शुद्ध भी स्फटिक नील पीत वस्त्र आदिके योगसे नीला और पीला प्रतीत होता है ॥ १४ ॥

वपुस्तुपादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्या-  
वघाततः ॥ आत्मानमंतरं शुद्धं  
विविच्यात्तंडुलं यथा ॥ १५ ॥

भा०—यद्यपि कोश और आत्माकी एकरूप-

ताके अभ्याससे आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है तथापि कोशोंसे पृथक् आत्माके विवेक करनेसे आत्मा शुद्धरूप प्रतीत होसकता है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि, जैसे तुष ( भूसी ) आदिसे युक्त भी चावलोंका शुद्ध आकार कूटना आदि युक्तिके द्वारा भिन्न शुद्धरूप प्रतीत होता है तैसेही अन्नमयआदि कोशोंकी विचाररूप युक्तिके द्वारा कोशोंके भीतर व्यापकरूप आत्माके शुद्धरूपकी प्रतीति होती है—और अन्नमय कोश पंचमहाभूतोंका कार्य होनेसे घटआदिके समान आत्मा नहीं होसकता और अन्नमयकोश ( देह ) को आत्मा मानोगे तो वर्तमान शरीरमें जो सुखदुःख भोगेजाते हैं वे विना कर्मकेही मानने पड़ेंगे और इस शरीरके जो पुण्यपापरूप कर्म है उनका विना फल भोगेही नाश मानना पड़ेगा इस प्रकार अकृतका अभ्यागम और कृतका नाशरूप

दोष हो जायगा—क्योंकि शरीररूप आत्मा जन्म-  
से पूर्व और मरणके अनन्तर नहीं रहता है इससे  
अन्नमयकोशरूप आत्मा नहीं है और अपंचीकृत  
पांच महाभूतोंका कार्य जड़रूप जो प्राणमय-  
कोश है वह भी आत्मा नहीं है क्योंकि वह जड़  
है और आत्मा चेतन है—और स्थूलदेहके समान  
मनोमयकोशभी आत्मा नहीं है क्योंकि मन  
संकल्प विकल्पात्मक है और आत्मा संकल्प-  
विकल्पसे रहित है और मन सत्त्वगुणका कार्य  
है और आत्मा नित्य है—और विज्ञानमयकोशभी  
आत्मा नहीं है क्योंकि विज्ञानमय सत्त्वगुणका  
कार्य है और परिणामी है और आत्मा परिणामी-  
से भिन्न है—और आनन्दमयकोशभी आत्मा  
नहीं है क्योंकि अविद्या वृत्तिवाला वह घटआदि  
के समान जड़ है और प्रिय मोद आदि वृत्तियोंसे  
युक्त है और आत्मा वृत्तियोंसे रहित और नित्य है

इसप्रकार पंच कोशोंसे भिन्न जो परमात्मा है  
वह सच्चिदानन्द साक्षीरूप है ॥ १६ ॥

तदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्राऽ-  
वभासते ॥ बुद्धावेवावभासते स्व-  
च्छेषु प्रतिविवरत् ॥ १६ ॥

भा०—यदि आत्मा व्यापक ब्रह्मस्वरूप है तो  
सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये इस शंकाका उत्तर देते  
हैं कि आत्मा तीनों कालोंमें सब वस्तुओंमें  
व्यापकरूपसे वर्तमान भी है तो भी सर्वत्र प्रतीत  
नहीं होता अर्थात् अस्ति, भाति, प्रियरूपसे  
सदैव संपूर्ण घट आदि पदार्थोंमें यद्यपि अनुभव-  
रूप आत्मा व्यापक है तथापि ज्ञाता ( जाननेवा-  
ला )रूप आत्मा बुद्धिके विषे ही इस प्रकार भास-  
ता है जैसे स्वच्छ पदार्थमें ही सूर्य आदिका प्रति-  
विवर पड़ता है मलिनमें नहीं अर्थात् सत्त्वगुणका

कार्य होनेसे शुद्ध जो बुद्धि है उसमें इस प्रकार आत्माका भान होता है जैसे घट पट कांच आदि मृत्तिकाके कार्योंमें निर्मल जो दर्पण उसमेंही मुख आदिका और अपनी किरणोंके द्वारा सर्वत्र व्यापक सूर्यका जलमें ही प्रतिरिंव पड़ता है घट आदिके विषे नहीं—इससे यह सिद्धभया कि देह आदि जो रजोगुण तमोगुणके कार्य हैं उनमें आत्माकी प्रतीति नहीं होसकती ॥ १६ ॥

देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो वि-  
लक्षणम् ॥ तद्वत्तिसाक्षिणं विद्या-  
दात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥

भा०—देह इंद्रिय आदिके विषे वर्तमान भी आत्मा उनसे भिन्न है इस बातको वृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि देह दश इंद्रिय मन बुद्धि और प्रकृति ( माया ) इनसे विलक्षण अर्थात् देहआदि माया-

के कार्य और जड़, परिणामी, दृश्य हैं और आत्मा इनसे भिन्न चेतनरूप, परिणाम रहित, अदृश्य, सत्यरूप है और देह आदिकी वृत्तियोंका साक्षी है—अर्थात् देहकी बाल्यावस्थारूप वृत्ति और रूप आदिमें नेत्र आदिकी वृत्तियोंके साक्षी आत्माको सदैव राजाके समान जाने जैसे सभामें स्थित राजा सभामें स्थित संपूर्ण मनुष्योंका साक्षी प्रेरक है और उनसे भिन्न है इसी प्रकार आत्माको भी देह आदिसे भिन्न और देह आदिका साक्षीरूप जानै ॥ १७ ॥

व्यापृतेष्विद्वियेष्वात्मा व्यापारी-  
वाविवेकिनाम् ॥ दृश्यतेऽभ्रेषु धा-  
वत्सु धावन्निंव यथा शशी ॥ १८ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि आत्मा भी व्यवहार वाला देह इंद्रिय आदिके संघातमें प्रतीत होता है

इससे साक्षीरूप नहीं होसकता क्योंकि साक्षी उनसे भिन्न होता है जिनका साक्षी होता है. सो ठीक नहीं क्योंकि अज्ञानियोंको ब्रह्मसे आत्मा व्यवहारीके समान प्रतीत होता है वस्तुतः आत्मामें कोईभी व्यापार नहीं है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि नेत्र आदि इंद्रिय जब अपने अपने व्यापारोंमें व्यवहार करती हैं अर्थात् अपने २ विषयोंको ग्रहण करती हैं तब इन्द्रियोंके व्यवहार करनेपर आत्माभी व्यवहार करनेवालेके समान आविवेकियोंको प्रतीत होता है अर्थात् मूर्ख पुरुष आत्माकोभी व्यवहारी मानलेते हैं और वह उनका मानना इसप्रकार ब्रह्मसे है कि, जैसे मेघोंके चलनेपर चंद्रमाभी चलता प्रतीत होता है—और बुद्धिमान् मनुष्य—मेघोंके समान न चंद्रमाको चलता मानते हैं और न आत्माको व्यापारी मानते हैं क्योंकि वस्तुतः आत्मा व्यापाररहित है ॥ १८ ॥

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रि-  
यमनोधियः ॥ स्वकीयार्थेषु वर्त-  
ते सूर्यालोकं यथा जनाः ॥ १९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि देह इन्द्रिय आदि  
जडपदार्थ व्यापारी हैं तो चेतनभी मानने चाहिये  
और देह इन्द्रिय आदि चेतन होयगे तो वे आत्म-  
रूपभी होजायँ गे सो ठीक नहीं—क्यों कि चेतन  
आत्माके आश्रयसे ही देह इन्द्रिय—अपने २ व्यव-  
हारमें वर्ते हैं इस बातको वृष्टान्तसे प्रगट करते हैं  
कि आत्माकी चेतनताका आश्रय लेकर देह-  
इन्द्रिय—मन—बुद्धि—ये अपने अपने विषयोंमें इस  
प्रकार वर्तती हैं जैसे सूर्यके प्रकाशके आश्रयसे  
सम्पूर्ण जन अपने अपने व्यवहारमें वर्तते हैं—इससे  
देह इन्द्रिय आदि स्वतः चेतन नहीं किन्तु आत्मा-  
की चेतनता ही उनमें प्रतीत होती है इसीसे वे  
आत्मरूप नहीं होसकते ॥ १९ ॥

देहेंद्रियगुणान्कर्माण्यमले सञ्चि-  
दात्मनि ॥ अध्यस्यंत्यविवेकेन  
गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

भा०—कदाचित् कहो कि आत्मा चेतनरूप है  
तो भी उसमें जन्म—मरण—यौवन—वृद्ध—काण—  
बधिर—दर्शन—श्रवण—आदि व्यवहार प्रतीत होनेसे  
आत्मा—जन्म—मृत्यु-वाला प्रतीत होता है—सो ठीक  
नहीं—क्योंकि, पूर्वोक्त जन्म—मृत्यु-आदि—व्यवहार  
जो आत्मामें प्रतीत होते हैं वे—अविवेकसे आत्माके  
विषे आरोपित हैं वस्तुतः आत्मा देह—इंद्रिय आ-  
दिके धर्मसे रहित है—इस बातको हृषींतसे हृढ  
करते हैं कि, देह—और इन्द्रियोंके जो अन्ध, बधिर,  
आदि धर्म हैं और गमन—वचन आदि जो कर्म हैं  
उनको—निर्मल अर्थात् अज्ञानके कार्य—देह—इंद्रिय—  
नाम—रूप—संसार—आदि मलसे रहित सञ्चित—आनंद—  
स्वरूप—आत्मामें—अविवेकसे मूढ़ पुरुष इसप्र-

कार आरोप करते हैं जैसे रूपरहित आकाशमें  
अविवेकसे नील पीत रंगोंका अज्ञानी पुरुष  
आरोप करते हैं—वस्तुतः आत्मामें जन्म—मरण  
आदि कोई भी धर्म नहीं है ॥ २० ॥

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वा-  
दीनि चात्मनि ॥ कल्प्यतेऽबुगते  
चन्द्रे चलनादिर्यथांभसः ॥ २१ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, देह आदिके जन्म  
आदि धर्म आत्माके विषय, मत हो—परंतु मैं क-  
र्ता-भोक्ता-पुण्यवान्-पापी-सुखी-दुःखी हूँ—इत्यादि  
प्रतीतिसे आत्मा कर्ता और भोक्ता प्रतीत होता  
है और नैय्यायिक आत्माको कर्ता भोक्ता मानते  
भी हैं सो ठीक नहीं क्यों कि, कर्तृत्व-भोक्तृत्व-  
आदि : अन्तःकरणके धर्म हैं वे अन्तःकरण  
और आत्माकी एकरूपताके अध्यास ( ब्रम ) से

आत्मामें आरोपित (माने) हैं इस बातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं कि मनकी उपाधि जो कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि धर्म हैं—उनसे आत्माका सच्चिदानन्दरूप आच्छादित ( ढका ) है—इससे आत्माके यथार्थ रूपको न जानकर—नैयायिक आदि अज्ञानी पुरुष-कर्तृत्व-भोक्तृत्व आदि धर्मोंकी आत्माके विषे अज्ञानसे इस प्रकार कल्पना करते हैं जैसे—चलने आदि जलके धर्मोंको जलमें प्रतिभिम्बित चंद्रमामें मान लेते हैं इससे आत्मा न कर्ता है न भोक्ता है ॥ २१ ॥

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ स-  
त्यां प्रवर्तते ॥ सुषुप्तौ नास्ति त-  
न्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः ॥ २२ ॥

भाषा—अब राग-इच्छा-आदि जो अन्तः-करणके धर्म हैं वे भी अज्ञानसे आत्मामें कल्पित हैं—इस बातको अन्वयव्यतिरेक युक्तिसे कहते हैं

कि, विषयोंकी विशेष अभिलाषाहृप और सामान्य अभिलाषाहृप इच्छा-और सुख-दुःख कर्तृत्व- भोक्तृत्व- आदि- संपूर्ण- धर्म- जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाके विषे-बुद्धि रहती है तो राग आदि प्रवृत्त होते हैं- और सुषुप्ति- अवस्थामें अपने कारणहृप अज्ञानमें बुद्धिकाल्य होनेसे कोई भी राग आदि धर्म प्रतीत नहीं होता अर्थात् बुद्धिके होनेपर रागोंका होनाहृप अन्वय बुद्धिके नाश होनेपर- रागोंका न होनाहृप व्यतिरेक इन अन्वय-व्यतिरेकोंसे पूर्वोक्त राग आदि धर्म-बुद्धि- के हैं- आत्माके नहीं ॥ २२ ॥

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यम-  
ग्रेर्यथोष्णता ॥ स्वभावः सञ्चिदा-  
नंदनित्यनिर्मलतात्मनः ॥ २३ ॥

भा०-कदाचित् कहो कि यदि आत्माका

स्वभाव रागआदिरूप नहीं तो आत्माका स्वभाव कैसा है—इस शंकाके उत्तरमें—हृष्टान्तोंसे आत्मा—के स्वभावका वर्णन करते हैं कि, जैसे सूर्यका प्रकाश स्वभाव है और जलका शीत स्वभाव है—और अग्निका उष्ण स्वभाव है—इसी प्रकार आत्मा—का सत्‌चित्‌ आनन्द-नित्यनिर्मल स्वभाव है॥२३॥

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्ति-  
रिति द्रयम् ॥ संयोज्य चाविवेके-  
न जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

भाषा—कदाचित् कहो कि, मैं जानताहूं और मैं सुखीहूं इस ज्ञानका आश्रय आत्मा प्रतीत होता है तो उसको निर्विकार सच्चिदानन्द कैसे कहसक्ते हो—इस शंकाके उत्तरमें लिखते हैं कि, आत्माका सत्‌चित्‌-अंश जो बुद्धिकी वृत्तिमें पड़ता है और अज्ञानरूप आनन्दका अंश जो बुद्धिकी वृत्ति

( ३६ )

आत्मबोधः ।

है—इन दोनोंको अविवेकसे मिलाकर मैं—जानता हूँ—मैं सुखीहूँ—इत्यादि—व्यवहारोंमें जीव प्रवृत्त होता है—और वस्तुतः असंग आत्मामें ज्ञान-श्रवण—सुख—दुःख आदि—नहीं होसकते—क्योंकि ज्ञान और सुखाकारवृत्ति बुद्धिका परिणाम है—इससे ज्ञान आदिका आश्रय बुद्धि है आत्मा नहीं—आत्मामें जो इनकी प्रतीति है वह बुद्धि और आत्माकी एकताके भ्रमसे है—इससे आत्मा निर्विकार सच्चिदानन्द रूप है ॥ २४ ॥

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेष्वर्गे—  
धोन जात्विति ॥ जीवः सर्वमलं ।  
ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुख्यति ॥ २५ ॥

भाषा—अब इस पूर्वोक्तकाही विशेषकर वर्णन करते हैं—आत्मामें कोई विकार नहीं है क्योंकि इस श्रृंतिके अनुसार आत्मा—निर्गुण

---

१ निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम् ।

क्रियारहित—शांत—पापरहित—और निरंजन  
 ( निर्मल ) है । और इस स्मृतिमें भी लिखा  
 है कि, आत्मा अव्यक्त चिन्ताके अयोग्य और  
 विकाररहित है—और बुद्धिमें—कदाचित् भी  
 बोध ( ज्ञान ) नहीं है—क्योंकि बुद्धि मायाका  
 कार्य होनेसे जड़ है—तथापि—अन्तःकरणमें प्रतिबि-  
 म्बित चेतनकी चेतनतासे संपूर्ण देह इंद्रिय आदि  
 जडपदार्थ—चेतनरूप प्रतीत होते हैं इससे अन्तः-  
 करण और आत्माके अभेदज्ञानसे बुद्धिके कर्ता  
 भोक्ता आदि धर्म—ब्रह्मसे आत्मामें प्रतीत होते हैं—  
 इससे जीव सबको अपनेमें जानकर मैं कर्ता हूं—और  
 द्रष्टा हूं—इस प्रकार मोहको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा-  
 भयं वहेत् ॥ नाहं जीवः परात्मेति  
 ज्ञातं चेत्रिर्भयो भवेत् ॥ २६ ॥

---

१ अव्यक्तोयमचिन्त्योयमविकाश्योयमुच्यते ।

भाषा—अब आत्मामें मिथ्या आरोपरूप अज्ञानके फल और तत्त्वज्ञानके फलको दिखाते हैं कि जैसे अंधकारसे युक्त देशमें मनुष्य रज्जुकोही सर्प समझता है इसी प्रकार आत्माको जीव जानकर भयको प्राप्त होता है—अर्थात् जैसे रज्जुसर्पके ज्ञानसे भय—कम्प होते हैं इसी प्रकार विकारराहित आत्माको जीव माननेसे आत्मामें अनेक प्रकार के—संसारके दुःखरूप भय प्रतीत होते हैं अर्थात् आत्माका अज्ञानी जन्म—मरणरूप भयको प्राप्त होता है और वह भय जीव और आत्माके द्वैतज्ञानसे होता है—क्योंकि—इस शुद्धिमें लिखा है कि, दूसरेसे भय होता है—और जो किंचित्तभी भेद करता है उसको भय होता है—यदि आत्माको न जाने तो बड़ीही नष्टता होती है—

१ द्वितीयाद्वै भयम्भवति—उदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति—न चेदिहावेदीन्महती विनाशिः ।

और इस स्मृतिमेंभी कहाहै कि, किंचितभी भेद करे तो रौख नरकमें जाता है—और जब मैं जीव नहीं किन्तु परात्माहूँ—ऐसा जानता है—अर्थात् तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके विचारसे जीवको सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप समझता है तब मनुष्य निर्भय होता है—सोई इस श्रुतिमें लिखा है कि, जो ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्मही होता है ॥ २६ ॥

आत्मावभासयत्येको बुद्धयादी-  
र्नींद्रियाणि च ॥ दीपो घटादिव-  
त्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥२७॥

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि आत्मा बुद्धि आदिके निकट है तो बुद्धि आदि उसे क्यों नहीं जानते—सो ठीक नहीं—क्योंकि जडरूप बुद्धि

१ ईषदप्यन्तरं कृत्वा गैरवं नरकं ब्रजेत् ।

२ ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

आदिको असंग आत्माका ज्ञान नहीं होसका  
 इस बातको दृष्टान्तसे कहते हैं—कि एकभी  
 आत्मा मन—बुद्धि—चित्त—अहंकार और इन्द्रिय  
 आदिका इस प्रकार प्रकाश करता है जैसे घट  
 आदि पदार्थोंका दीपक प्रकाश करता है और  
 अपने आत्मा स्वरूप—वह परमात्मा बुद्धि आदि  
 जड पदार्थोंसे इस प्रकार प्रकाशित नहीं होता जैसे  
 घट आदिसे दीपकका प्रकाश नहीं होता ॥ २७ ॥

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरू-  
 पतयात्मनः ॥ न दीपस्यान्यदी-  
 पेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते ॥ २८ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि बुद्धि आदिसे  
 आत्मा प्रकाशित नहीं होता तो उसका प्रकाश  
 किससे होता है—इस शंकाके उत्तरमें बोधरूप  
 आत्माका स्वयंही ज्ञान होता है—इस बातको  
 दृष्टान्तसे हट करते हैं कि आत्मा स्वयं बोध-

रूप है इससे बोधरूप आत्माके बोधमें अन्य  
बोधकी इसप्रकार अपेक्षा नहीं, जैसे—एक दीप-  
कको अपने प्रकाशके लिये अन्य दीपककी अपेक्षा  
नहीं—इससे स्वात्मा स्वयंप्रकाशित होताहै ॥ २८ ॥

निषिद्धं निखिलोपाधीन्नेति नेती-  
ति वाक्यतः ॥ विद्यादैवक्यं महावा-  
क्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि आत्माका स्व-  
तःही साक्षात्कार ( प्रत्यक्ष ) है तो यत्के विनाही  
सब मुक्त होजायेंगे तो श्रवण—मनन—आदि जो  
मुक्तिके उपाय हैं वे सब व्यर्थ हो जायेंगे  
सो ठीक नहीं. क्योंकि अपरोक्ष रूपसे  
जो आत्माके चैतन्यका ज्ञान है—वह सामान्य  
ज्ञान होनेसे मुक्तिका साधन नहीं है किंतु  
महावाक्योंसे उत्पन्न जो जीव और ब्रह्मकी  
एकताका ज्ञान वही मुक्तिका कारणहै—इसकाही

वर्णन करते हैं कि, नेतिनेति इस वाक्यसे सम्पूर्ण उपाधियोंका निषेध करके तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे जीव और परमात्माकी एकताको जानै अर्थात् इस व्याससूत्रके अनुसारही वह यह उपदेश है कि, नेति २ यह आत्मा नहीं २ इत्यादि श्रुतियोंके वचनोंसे अतत् ( आत्मासे भिन्न ) का निरसन( त्याग ) करै अर्थात् आत्मासे भिन्नको जड और अनित्य समझे इस प्रकार स्थूल सूक्ष्म और कार्य कारणरूप नामरूपात्मक जगत्को अनित्य जाननेके अनंतर इन महा वाक्योंसे जीव और परमात्माकी एकताको जानै उस एकताको ज्ञानकोही मुक्तिका हेतु कहते हैं कि वह ब्रह्म तूहै—यह जीवात्मा ब्रह्महै—प्रज्ञान ब्रह्महै—मैं ब्रह्महूँ और महावाक्योंसे एक-

१ स एष आदेशो नेतिनेतीत्यतन्निरसनम् ।

२ तत्त्वमसि—अयमात्मा ब्रह्म—प्रज्ञानं ब्रह्म—अहं ब्रह्मास्मि ।

ताके ज्ञानका प्रकार वह है कि, दोनोंपद एक अर्थमें जहाँ वाच्य वाचक भाव संबंधसे वर्ते (कहें) उसे सामानाधिकरण्य कहते हैं और वाच्य उसको कहते हैं जिसका शब्दके उच्चारण करतेही ज्ञानहो जैसे घटके उच्चारणसे घडेका—और वाचक उसको कहते हैं—जिसके उच्चारणसे पदार्थ जानाजाय जैसे पूर्वोक्त उदाहरणमें घट शब्द—अर्थात् घट शब्द और घडेका वाच्य वाचक भाव आदि संबंध है वह संबंध तीन प्रकारकाहै । १ सामानाधिकरण्य—२ विशेषण विशेष्यभाव—३—लक्ष्य लक्षण भाव—उनमें सामानाधिकरण्य, मुख्यसामानाधिकरण्य और बाधसामानाधिकरण्य भेदसे दो प्रकारकाहै—जिस वस्तुका जिस वस्तुके संग सदैव अभेदहो वह मुख्यसामानाधिकरण्य, जैसे डेलेके सुवर्ण और भूषणके सुर्वणका—और जहाँ किसी अंशको बाधकर अभेदहो वह बाधसामानाधि-

करण्य--जैसे भूषणके नामरूपको बाधकर दोनों पूर्वोक्त सुवर्णोंका अभेद होताहै--अथवा जहाँ दो पदोंका परस्पर भेदहो और अर्थ एकहो वहाँ बाधसामानाधिकरण्य होताहै । जैसे--घट और कुंभ शब्दमें वहाँ शब्द भेद होनेपरभी मृत्तिकारूप लक्ष्य एकहै--वा जैसे सोयं देवदत्तः ( वह यह देवदत्त है जो काशीमें देखाथा ) इस वाक्यमें सः अयं देवदत्तः ये तीन पदहैं उनमें सः पद तिस परोक्षकालमें दृष्टका बोधकहै और अयं यह पद वर्तमान कालवृत्तिका बोधकहै ऐसे दोनों पदोंका भिन्न २ अर्थ हैं परन्तु दोनों पदोंका तात्पर्य एक देवदत्तमें है इससे देशकालरूप विशेषणके परित्यागसे देवदत्तरूप पिंड मात्रकर बोध होताहै--इसीप्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमें परोक्ष आदि विशेषण विशिष्ट चेतन तत्पदका वाच्य अर्थ है और अपरोक्ष आदि विशे-

षण विशिष्ट चेतन त्वंपदका वाच्य अर्थ है इन दोनों पदोंका अर्थ भिन्न २ है और तात्पर्य शुद्ध चेतनके विषय है इससे परोक्ष अपरोक्ष आदि विशेषणोंके त्यागसे चेतनरूप अर्थमें दोनोंका सामानाधिकरण्य है यह सामानाधिकरण्य प्रथम है और दूसरा विशेषणविशेष्यभाव संबंध यह है कि, जैसे सोयं देवदत्तः—यहाँ सः अयं ये दो पद, देवदत्त पदके विशेषण हैं और देवदत्त विशेष्य है और ये दोनों अपने २ देश कालरूप अर्थको छोड़कर देवदत्तके स्वरूपको बोधन करते हैं इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमें भी तत्पदका अर्थ परोक्ष आदि विशेषणसहित है—और त्वंपदका अर्थ अपरोक्ष आदि विशेषण सहित चेतन है विशेषणोंको त्यागकर दोनोंका आसि (है) इस पदमें सामानाधिकरण्य है—तीसरा संबंध लक्ष्यलक्षण भावहै कि, जैसे सोयं देवदत्तः यहाँ

सः अयं इन दो पदोंसे देशकाल आदि विशेष-  
 णोंको छोड़कर देवदत्तमात्र लिखा जाता है इसी-  
 प्रकार तत्त्वमासि आदि महावाक्योंमें भी तत्पदका  
 अर्थ—अद्वितीय—परोक्षव्यापकचेतन है और त्वं-  
 पदका अर्थ—सद्वितीय—अपरोक्ष परिच्छिन्न चेतन  
 है इन विरुद्ध धर्मोंको त्यागकर एक चेतन जो  
 विरुद्ध धर्मरहित, लक्ष्य अर्थ है वह लिखा जाता है—  
 इस प्रकार पूर्वोक्त तीनों संबंधोंसे लक्षणाके द्वारा  
 जीव और ब्रह्मकी एकता सिद्ध होती है—और वह  
 लक्षणा जहत्, अजहत्, जहदजहत्, भेदसे तीन  
 प्रकारकी है—जैसे गंगामें घोसियोंका ग्राम है यहाँ  
 गंगाके प्रवाहरूप वाच्य अर्थमें ग्रामका असंभव है  
 इसलिये गंगापदकी अपने प्रवाहरूप वाच्य अर्थ—  
 को छोड़कर तीरमें लक्षणा है—क्योंकि जहाँ पद अपने  
 संपूर्ण अर्थको छोड़दे वह जहत् लक्षणा कहाती  
 है—और महावाक्योंमें चेतनरूप अर्थ दोनोंका

एक है इससे अर्थका त्याग न होनेसे जहत् लक्षणा  
 नहीं होसकती—और अरुण (लाल) दौड़ता है  
 यहां लाल रंगमें दौड़ना असंभव है इससे अरुणप-  
 दकी लालघोड़ेमें लक्षणा है यहां अरुणपदकी अपने  
 लालरूप अर्थको न छोड़कर लालघोड़ेमें अजहत्  
 लक्षणा होती है । क्योंकि जहां अपने अर्थको न  
 छोड़कर पद दूसरे अर्थको कहे वहां अजहत्  
 लक्षणा होती है—यह लक्षणाभी महावाक्योंमें नहीं  
 हो सकती । क्योंकि उनमें संपूर्ण वाच्य अर्थका  
 ग्रहण नहीं है—और जहां किंचित् अर्थका त्याग  
 और किंचित् का ग्रहण हो वह जहदजहत् लक्षणा  
 होती है वह लक्षणाही महावाक्योंमें इसप्रकार  
 घटती है । जैसे—सोयं देवदत्तः इस वाक्यमें देशकाल  
 और पुष्ट कृश आदि विशेषणोंका त्याग है और  
 पिंडमात्र देवदत्तका ग्रहण है ऐसेही तत्त्वमासि

आदि महावाक्योंमें समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्म, आदि विरुद्ध अंशको त्यागकर व्यापक अखंड चेतन्यमात्रका जहदजहत् लक्षणासे बोध होता है इसको ही भागत्यागलक्षणा कहते हैं ॥ २९ ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्ध-  
दवत्क्षरम् ॥ एतद्विलक्षणं र्वि-  
द्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, चेतन असंग है इस-  
से स्थूल आदि उपाधियोंके न त्याग करनेमें क्या  
हानि है सो ठीक नहीं क्योंकि उपाधियोंके त्याग  
विना अखंड सत् चित् आनन्दका ज्ञान इस प्रकार  
नहीं हो सकता जैसे अज्ञानसे आरोपित सर्पके  
निषेध विना रज्जुका ज्ञान नहीं होता है इस बातका  
वर्णन करते हैं कि, अज्ञानसे कल्पित जो  
शरीर आदि दृश्य ( देखने योग्य ) जड पदार्थ हैं  
उनको बुद्धद ( बुलबुला ) के समान नाशवान् स-

मझे और इनसे विलक्षण अर्थात् नित्य निर्मल अ-  
पने जीवात्माको मैं ब्रह्म हूं ऐसे समझे अर्थात् उपा-  
धिरूप मलोंसे राहित ब्रह्मरूप मैं हूं यह जानै ॥३०॥

देहान्यत्वात्र मे जन्मजराका-  
श्यर्यलयादयः ॥ शब्दादिविषयः  
संगो निर्दियतया न च ॥ ३१ ॥

भा०—अब महावाक्योंसे उत्पन्न हुई जो जीव  
और ब्रह्मकी एकता उसके मननका प्रकार कहते  
हैं कि, स्थूल और सूक्ष्म शरीरसे मैं भिन्न हूं इससे  
मेरेमें जन्म जरा कृशता मरण आदि नहीं हैं और  
आदि पदके देनेसे क्षुधा, तृष्णा आदि जो देहके  
धर्म हैं वेभी आनंदरूप, असंग मेरेमें नहीं हैं और  
मैं इंद्रियोंसे राहित हूं इससे शब्द स्पर्श रूप रस  
गंध आदि विषयोंके संगभी मेरा संबंध नहीं है  
निदान मैं असंग निर्मल स्वभावरूप ब्रह्म हूं ऐसे  
मनन करै ॥ ३१ ॥

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्रेषभ-  
यादयः ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र  
इत्यादिश्रुतिशासनात् ॥ ३२ ॥

भा०—अब आत्मामें मनके धर्मोंका निषेध  
कहते हैं कि, मैं मनसे भिन्न हूं इससे मेरे-  
में दुःख—विषयोंमें प्रीतिरूप राग द्रेष (वैर)  
संकल्प, विकल्प, मोह, शोक, भय आदि  
जो मनके धर्म हैं वे मेरेमें नहीं हैं—और  
क्षुधा तृष्णा आदि जो प्राणोंके धर्म वेभी मेरेमें नहीं  
हैं क्योंकि, मैं मन प्राणोंसे भिन्न हूं—इससे श्रुतिने  
भी आज्ञाकी है कि, परमात्मा प्राणसे भिन्न है और  
मनसे भिन्न है और शुभ्र अर्थात् अविद्याके मलोंसे  
रहित है और अखण्ड सच्चिदानन्दरूप निर्विकार  
शुद्ध चेतनरूप है ॥ ३२ ॥

एतस्माज्ञायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रि-

याणि च ॥ खं वायुज्यांतिरापश्च  
पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ ३३ ॥

भा०—अब प्राण आदि परमात्मासे उत्पन्न होनेसे अनित्य हैं । इस बातका वर्णन करते हैं कि, इस प्रत्यक्ष भिन्न अर्थात् अन्तःकरणके साक्षी वा प्रेरक—वा असत् जड दुःखरूप संसारसे विपरीत सत् चित् आनन्दरूप ब्रह्मसे क्रिया शक्तिरूप प्राण और ज्ञानशक्तिरूप मन ( अंतःकरण ) और संपूर्ण इंद्रिय और आकाश वायु आग्नि जल और स्थावर जंगमरूप विश्वके धारण करनेवाली पृथिवी यह संपूर्ण प्रपञ्च—अनादि अविद्याके द्वारा पूर्वोक्त ब्रह्मसेही उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः ॥ निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ॥ ३४ ॥

भा०—प्रकृतिरूप माया और मायाके कार्य बुद्धि, और सत्त्वगुण, राग, इच्छा, आदिसे रहित रूप, निर्गुण—और देह आदिकी क्रियासे रहितरूप निष्क्रिय—और देह आदिसे भिन्नरूप नित्य चेतनरूप—और विकल्पसे रहित अर्थात् मनसे भिन्न निरंजन अर्थात् मायाके मलसे रहित—और विकारसे रहित—और निराकार अर्थात् आकाशके समान निरवयव—नित्यमुक्त अर्थात् मोह आदि जो अज्ञानसे कलिपत बंधनहैं उनसे रहित और निर्मल अज्ञानसे कलिपत अविद्यारूप मायाके बंधनसे रहित—मैं हूँ इसप्रकार अपने आत्मरूपको जानौ॥३४॥

अहमाकाशवत्सर्ववहिरंतर्गतोऽ-

च्युतः ॥ सदा सर्वसमः शुद्धो  
निःसंगो निर्मलोऽचलः ॥ ३५ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, जीवात्मा निर्गुण

आदिरूपहो परंतु देहवान् प्रतीत होता है इससे परिच्छन्न हो जायगा सो ठीक नहीं इस शंकाका उत्तर आत्माको असंग दिखाकर देतेहैं कि, जगत्-के संपूर्ण जो जड वृश्य पदार्थ हैं उनके भीतर मैं आकाशके समान गत ( व्यापक ) हूं—और सबसे भिन्न एकरस चेतन रूपहूं—कदाचित् कहो कि, सबके नाशसे आत्माकाभी नाश हो जायगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि मैं अच्युत हूं अर्थात् संपूर्ण कल्पित जगत्-के नाश होनेपर मेरा नाश नहीं है । क्योंकि मैं अधिष्ठानरूप हूं—कदाचित् कहो कि, अधिष्ठानरूपसे तू सत्य अविनाशी है परंतु अंतः-करणमें तो आपकी सत्ता और चेतनता दोनों प्रतीत होती हैं और घट आदिमें केवल सत्ताही प्रतीत होती है यह विषमता आपमें है सो ठीक नहीं क्योंकि मैं सदैव ( सब काल ) में संपूर्ण पदार्थोंके विषे सम ( तुल्य ) हूं और सत्त्वगुणके कार्य

होनेसे स्वच्छ अंतःकरण आदिमें सत्ता और चेतनता दोनों प्रतीत होती हैं और तमोगुणके कार्य मलिन घट आदिमें सत्ताही प्रतीत होती है इसमें मुझ आत्माका कौन अपराध है—और मैं शुद्ध अर्थात् पुण्य पापसे रहित हूं और असंग अर्थात् वस्तुतः सबके संबंधसे रहित हूं—और निर्मल हूं अर्थात् संशय आदि मलोंसे रहित हूं—और अचल हूं अर्थात् सच्चिदानन्दरूप आदि अपने धर्मोंसे चलायमान नहीं होता ॥ ३६ ॥

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखंडानंदम-  
द्वयम् ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं  
ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३६ ॥

भा०—अब त्वंपदार्थ जीव, और तत् पदार्थ ब्रह्मका जो लक्ष्यपूर्वक वर्णन किया है उन दोनोंके अभेदका चिंतन (विचार) करते हैं कि

नित्य अर्थात् भूत भविष्यत वर्तमान कालमें  
बाधरहित—शुद्ध अर्थात् अविद्या आदि मलसे  
रहित—विमुक्त अर्थात् संसाररहित—एक अर्थात्  
सजातीय भेदसे शून्य—अखंड अर्थात् देशकाल  
वस्तुके परिच्छेदसे शून्य—आनन्द (सुखरूप) अद्वय  
अर्थात् विजातीय और स्वगत भेदसे रहित—इस  
प्रकारका जो सत्य, ज्ञान, अनन्तरूप परब्रह्मका  
स्वरूप है वह इस श्रुतिमें भी कहा है वही सच्चिदा-  
नन्दरूप मैं हूँ इस प्रकार जीवात्मा और परमात्माकी  
एकताकी चिंता करै ॥ ३६ ॥

एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मे-  
ति वासना ॥ हरत्यविद्याविक्षे-  
पात्रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥

भा०—इस प्रकार चिरकालपर्यंत किये अभ्या-

१ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ।

ससे हठ हुये जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे उत्पन्न हुई विद्या—उसीसमय अविद्या और अविद्यासे उत्पन्न जन्ममरण आदिरूप संसारको नष्ट कर देती है इसका वर्णन करते हैं कि इस पूर्वोक्त रीतिसे बहुत कालतक निरंतर अभ्यास ( मनन ) का ब्रह्मही मैं हूँ यह वासना अर्थात् देह और आत्माकी एकताके ज्ञानकी तुल्य जो ब्रह्म और आत्माकी एकताका हठ ज्ञान वह अविद्याके किये चित्तके विक्षेप अर्थात् आत्मा और ब्रह्मका भद्र ज्ञान आदि उनको इसप्रकार नष्ट करती है जैसे रोगोंको रसायन ( औषध ) सेवनसे नष्ट करती है ॥ ३७ ॥

विविक्तदेश आसीनो विरागो  
विजितेऽद्वियः ॥ भावयेदेकमा-  
त्मानं तमनंतमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

भा०—अब ब्रह्म और आत्माकी एकताके विचारका साधन कहते हैं कि, एकांत स्थानमें स्थित और विराग अर्थात् शब्द स्पर्श आदि विषयोंकी इच्छासे रहित—और विशेषकर जीती हैं इंद्रिय जिसने वह पुरुष अनन्यबुद्धि होकर अर्थात् अपने एक आत्मामेंही बुद्धिको लगाकर उस एक अनंत अर्थात् देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे शून्य वा नाश रहित आत्माकी भावना (विचार)करै कि, जो सब भूतोंमें स्थित चेतनरूप ब्रह्म है वही मैं हूँ अन्य नहीं यह निश्चय करै—इस प्रकार चिंतन करनेसे ब्रह्म और आत्माकी एकताका दृढ़ निश्चय हो जाताहै ॥ ३८ ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य  
धिया सुधीः ॥ भावयेदेकमात्मा-  
नं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि हृश्य ( देखने योग्य ) प्रपञ्च व्यवहार दशामें प्रत्यक्ष वर्तमान है तो एकताकी भावना कैसे हो सकती है—इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, शुद्ध है अंतःकरण वा बुद्धि जिसकी ऐसा मुमुक्षु आत्माके विषे अर्थात् कारण-रूप विवेकवाली बुद्धिमें संपूर्ण हृश्य ( दीखते ) जगत्को लय करके एक आत्माकी निर्मल आकाशके समान भावना ( विचार ) करै अर्थात् शरत्कालके मेघ रहित आकाशके समान आत्माको भी स्वच्छ और एक रस समझै—और लयका प्रकार यह है कि पृथ्वीको जलमें जलको आग्निमें—आग्निको वायुमें—वायुको आकाशमें—आकाशको अव्याकृत ( मूल प्रकृति वा माया ) में और अव्याकृतको ब्रह्ममें लयकरै—फिर शुद्ध ब्रह्म व्यापकरूप मैं हूं ऐसा चिंतन करै ॥ ३९ ॥

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय पर-  
मार्थवित् ॥ परिपूर्णचिदानन्द-  
स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

भा०—अब संपूर्ण दृश्य प्रपञ्चके त्यागसे समा-  
धिके विषे जो विवेकीकी स्थिति उसका वर्णन  
करते हैं कि, परमार्थ ( मोक्ष वा ब्रह्म ) का ज्ञाता  
विवेकी पुरुष—नामरूप आदि संपूर्ण दृश्य—जाति  
मूर्ति आदि प्रपञ्चको त्यागकर—परिपूर्ण ( व्यापक  
आधिष्ठान—अंतर्यामी—सत् चित् आनन्द स्वरूप  
साक्षी शुद्ध—चेतनरूपसे टिकता है अर्थात् परिपूर्ण  
आदि स्वरूपही अपने जीवात्माको मानता है—  
और आत्माका जो ज्ञानी है उसकी स्थिति इस  
वर्चनमें भी भगवान् ने वर्णनकी है कि, जैसे  
पवन रहित देशमें दीपक निश्चल रहता है वही

१ यथा दीपो निवातस्थो नैंगते सोपमा स्मृता । योगिनो यत-  
चित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥

उपमा उस योगीकी है जिसका चित्त वशमें है और जो अपने योगमार्ग ( चित्तकी वृत्तिको रोकना ) में लगरहा है ॥ ४० ॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न  
विद्यते ॥ चिदानंदैकरूपत्वादी-  
प्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, समाधिमें पृथिवी आदि दृश्य प्रपञ्चके लय होनेपर भी ज्ञाता—ज्ञान ज्ञेयका भेद त्रिपुटीरूप प्रपञ्चके विद्यमान रहते पूर्वोक्त दीपककी उपमा योगीमें कैसे घटसकती है—इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, साविकल्पक समाधिमें यद्यपि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयका भेद प्रतीत होता है परंतु निर्विकल्पक समाधिमें प्रतीत हुआ जो परब्रह्मरूप परमात्मा है उसमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयका भेद प्रतीत नहीं होता है क्योंकि, वह परमात्मा चिदानंदरूप होनेसे स्वयं एव ( आपोआप )

प्रकाशित होता है अर्थात् उसके ज्ञानके लिये  
किसीभी ज्ञान आदिकी अपेक्षा नहीं है ॥ ४१ ॥

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं  
कृते ॥ उदितावगतिज्वाला  
सर्वज्ञानेधनं दहेत् ॥ ४२ ॥

भा०—इसप्रकार ब्रह्म और आत्माकी एक-  
ताके ज्ञानार्थ जो प्रयत्न उसके फलका वर्णन  
करते हैं कि, इसप्रकार आत्मा ( मन ) को नीचेकी  
अरणि और ओंकारको ऊपरकी अरणि ( मथनेकी  
लकड़ी ) करके निरंतर ध्यानरूप मथन करनेपर  
उदित ( उत्पन्न ) हुई जो अखंड ब्रह्माकार वृत्ति  
रूप ज्वाला वह संपूर्ण अज्ञान और अज्ञानकार्य  
जन्ममरण आदि संसाररूप ईधनको दग्ध ( भस्म )  
करदेती है सोई इस श्रुतिमें लिखा है कि

१ आत्मानमरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् । ज्ञाननिर्मथना-  
भ्यासादहेत्कर्म स पंडितः ।

मनको नीचेकी और ओंकारको ऊपरकी अरणि  
बनाकर ज्ञानके मथनेसे जो कर्मोंको दग्ध करताहै  
वही पंडित है ॥ ४२ ॥

अरुणनेव बोधेन पूर्वसंतमसे  
हते । तत आविर्भवेदात्मा  
स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

भा०—उत्पन्न हुई पूर्वोक्त ज्वाला अज्ञानरूप  
ईधनको दग्ध करतीहै और तभी आवरण रहित  
आत्माका प्रकाश होताहै इन दोनों बातोंको दृष्टि-  
तसे स्पष्ट करतेहैं कि जैसे अरुण (सूर्यका सारथि)  
के उदय होनेसे प्रथम जो गाढ अंधकार उसका  
नाश होनेसे सूर्यका अखंड प्रकाश होताहै इसी  
प्रकार बोध (एकताका ज्ञान) से अज्ञानरूप अंध-  
कारकी निवृत्ति होनेपर आत्माकाभी सूर्यके समान  
प्रकाश होताहै अर्थात् साक्षात् ब्रह्मज्ञान होजाताहै

सोई गीतामें लिखा है कि, जिनका वह अ-  
ज्ञान, ज्ञानसे नष्ट हो गया है उनको ब्रह्मका ज्ञान  
इसप्रकार प्रकाशित होता है जैसे सूर्यका प्रकाश  
होता है ॥ ४३ ॥

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्य-  
वदविद्यया ॥ तन्नाशोऽप्राप्तवद्भा-  
ति स्वकंठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

भा०—यदिश्रुतिआदि प्रमाणोंसे आत्मा साक्षात्  
अपरोक्ष है तो नित्य प्राप्त है क्योंकि अप्राप्त और  
परोक्ष नहीं होता है तो ऐसे ब्रह्मकी अज्ञानके  
नाशसे प्राप्ति कैसे कहते हो सो ठीक नहीं क्योंकि  
नित्य प्राप्त भी आत्मा अविद्यासे अप्राप्तके समान  
और अविद्याके नाशसे प्राप्तके समान प्रतीत होता  
है इस बातको दृष्टान्तसे वर्णन करते हैं कि, यद्यपि

---

१ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः । तेषामादि-  
त्यवज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।

ज्ञानदृष्टिसे आत्मा निरंतर प्राप्त है तथापि अविद्यासे अज्ञानियोंको अप्राप्तके समान—और अविद्याके नाश होनेपर प्राप्तके समान—इस प्रकार प्रतीत होता है जैसे अपने कंठका भूषण अज्ञान से अप्राप्त और ज्ञानसे प्राप्त होजाता है ॥ ४४ ॥

स्थाणौ पुरुषवद् भ्रांत्या कृता ब्रह्मणि जीवता ॥ जीवस्य तात्त्व-  
के रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते ॥ ४५ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, जिसका अपरोक्ष साक्षत्कार है वह ब्रह्मही नित्य प्राप्त है जीवात्मा नित्य प्राप्त नहीं हो सकता सो ठीक नहीं क्योंकि अज्ञानसे भ्रमकेद्वारा परमात्माही जीव भाव-को प्राप्त हो जाता है वस्तुतः कोई जीव नहीं है इस बातको दृष्टांतसे वर्णन करते हैं कि जैसे स्थाणमें अंधकारके विषे भ्रांतिसे पुरुषको तुल्यता प्रतीत होती है इसी प्रकार ब्रह्ममें भ्रमसे जीवभाव

प्रतीत होता है अर्थात् अनादि अज्ञानसे ब्रह्मही जीव प्रतीत होने लगता है और महावाक्योंके द्वारा जीवका जो वह तात्त्विक ( सच्चा ) रूप है उसके साक्षात्कार करनेसे (जाननेसे) वह जीवभाव इस प्रकार निवृत्त हो जाता है जैसे स्थाणुके ज्ञान-से पुरुष भ्रमकी निवृत्ति हो जाती है ॥ ४५ ॥

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञान-  
मंजसा ॥ अहं ममेति चाज्ञानं  
बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४६ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, विवेकियोंको भी अहं-मम-( मैं मेरी ) इत्यादि व्यवहारकी प्रतीतसे संसारकी निवृत्ति कैसे होगी सो ठीक नहीं—क्यों-कि, अज्ञानसे उत्पन्न-वा पूर्वोक्त व्यवहार तत्त्वज्ञान-से नष्ट हो जाता है इस बातका हृषान्तपूर्वक वर्णन करते हैं कि,—वास्तविक सच्चिदानन्दरूप

जीवका जो यथार्थ स्वरूप उसके अनुभव (ज्ञान) से उत्पन्न हुआ जो तत्त्वमासि आदि महावाक्यों-के द्वारा जीव और ब्रह्मकी एकताका दृढ़ज्ञान उससे सुखपूर्वक ही अहं-मम-इस-अज्ञानका इस प्रकर बोध होता है जैसे-दिशाओंका भ्रम पूर्व-में सूर्योदयके ज्ञानसे नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्म-  
न्येवाखिलं स्थितम् ॥ एकं च सर्व-  
मात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥

भाषा०—अब निवृत्त हुआ है अज्ञान जिनका ऐसे विवेकियोंकी दृष्टिका वर्णन करते हैं— कि—संशय और विपरीत ज्ञानसे—रहित जो ब्रह्मके साक्षात् ज्ञाता योगी हैं—उनको—ज्ञान-रूप—कूटस्थ—साक्षी— स्वरूप—अपने—आत्माके विषेही—संपूर्ण दृश्य प्रपञ्च—स्थित—( कल्पित ) दीखता है—और—संपूर्ण जगत्को ज्ञान-

द्विष्टिसे—एक—आत्मस्वरूप—ही देखते हैं— अर्थात्  
आत्मासे भिन्न जगत् को—शशशृंग—और आकाश-  
पुष्प के समान कल्पित समझकर—आत्मा के—स्वरू-  
प को ज्ञानद्विष्टिसे देखते हैं ॥ ४७ ॥

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्य-  
न्न विद्यते ॥ मृदो यद्गद्धटादीनि  
स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, प्रत्यक्षसे प्रतीत इस  
जगत् को आत्मासे भिन्न कैसे कहते हो सो ठीक नहीं  
क्योंकि, यद्यपि उपादेय (कार्य) उपादान (कारण)  
से—भिन्न भी प्रतीत होता है तथापि—पूर्वोक्त बाधसा-  
मानाधिकरण्यसे—अभेद—प्रतीत होता है—इस बात-  
को दृष्टांतपूर्वक वर्णन—करते हैं—कि, यह संपूर्ण ज-  
गत्—आत्मा ही है—क्योंकि, आत्मासे उत्पन्न होने से  
आत्मासे अन्य इस प्रकार नहीं है—जैसे उपादान-

रूप मृत्तिकासे उत्पन्न हुए घट आदि-मृत्तिकासे  
भिन्न नहीं हैं—इस प्रकार संपूर्ण जगत् को आत्मस्व-  
रूप ही देखता है—अपनेसे भिन्न नहीं देखता ॥४८॥

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपा-  
धिगुणस्त्यजेत् ॥ सच्चिदानन्दरू-  
पत्वाद्वेद् ब्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥

भा०—अब ज्ञानीकी वास्तव हास्तिको—कह-  
कर—जीवन्मुक्ति—अवस्थाका वर्णन करते हैं कि,  
जीवन्मुक्ति—पुरुष तो—पूर्वोक्त जीव और ब्रह्मकी  
एकताको जानकर तत्त्वज्ञानसे पूर्व जो उपाधियोंके  
गुण थे—उनको—श्रवण—आदिद्वारा मायाके धर्म  
जानकर—विवेकसे त्यागता है—और—फिर—इस  
प्रकार सच्चिदानन्दरूप होजाता है जैसे भृंगीना—  
मका कीट—ब्रमर—कीटके भयसे—ब्रमरकीटरूप ही  
हो जाता है ॥ ४९ ॥

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषा-  
दिराक्षसान् ॥ योगी शांतिसमा-  
युक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥ ५० ॥

भा०--अब जीवन्मुक्तकी स्थितिका वर्णन करते हैं कि, आत्माके विषे है आराम ( स्थिति ) जिसको—ऐसा योगी—मोहरूपी अज्ञानके समुद्रको तरकर और राग द्वेष आदि राक्षसोंको हतकर—शान्तिसे—युक्त हुआ—विराजमान होता है—इस श्लोकका—श्लेषसे दूसराभी अर्थ—होसकता है कि, जैसे—श्रीरामचंद्रजनि—समुद्रको तरकर और रावण आदि राक्षसोंको हतकर और सीतासे संयुक्तहोकर राजसिंहासनपर—स्थिति की थी इसप्रकार ब्रह्म-ज्ञानका साधक योगी तत्त्वज्ञानके द्वारा—मोहरूपी समुद्रको तर—और उन राग—द्वेष आदि—राक्षसोंको हतकर जिन्होंने शांतिरूप सीताको चुराया था,

फिर—शान्तिसे—युक्तहुआ श्रीरामचंद्रके समान  
विराजमान होता है—अर्थात्—निवृत्तिरूप सिंहा-  
सनपर बैठता है ॥ ६० ॥

बाह्यानित्यसुखासक्ति हित्वात्म-  
सुखनिर्वृतः ॥ घटस्थदीपवत्स्व-  
च्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥ ५१ ॥

भा०—अब लक्षणसे जीवन्मुक्तकी अवस्थाका  
दृष्टान्तसे—वर्णन करते हैं कि, नेत्र आदि बाह्य इन्द्रि-  
योंके संबन्धसे उत्पन्न हुआ जो विषयानन्दरूप  
अनित्यसुख उसके विषे आसक्ति ( प्रीति ) को  
त्यागकर—आत्मसुखसे निवृत्त ( सुखी ) हुआ स्वच्छ-  
रूपसे अपने अन्तःकरणमें—इसप्रकार—साक्षात्  
ब्रह्मरूप प्रकाशता है जैसे घटके विषे स्थित-  
दीपक—घटके भीतर ही प्रकाशता है—बाहर नहीं

सोई—गीतामें—लिखा है कि हे अर्जुन ! जब मनकी सब कामनाओंको त्यागता है तब अपने आत्मामें ही—सन्तुष्ट हुआ—स्थितप्रज्ञ—( स्थिखुद्धि ) कहाता है ॥ ६१ ॥

उपाधिस्थोऽपि तद्वर्मेन् लिप्तो  
व्योमवन्मुनिः ॥ सर्वविन्मूढव-  
त्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

भा०—उपाधियोंमें—स्थित भी—उपाधियोंका साक्षीरूप मुनि अर्थात्—वेदान्तशास्त्रका मनन करनेवाला तत्त्वज्ञानी—उपाधियोंके सुख—दुःख आदि धर्मोंसे इसप्रकार लिप्त नहीं होता—जैसे आकाश धूलि आदिसे लिप्त नहीं होता—और सबका ज्ञाता भी वह मूढ़के समान—टिकता है—और—विषयोंमें आसक्त हुआ वह वायुके समान

---

१ प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थं मनोगतान् । आत्मन्ये-  
वात्मनातुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

विचरता है अर्थात्—जैसे वायु सुगन्धित पदार्थोंमें  
प्रीतिसे रहित होकर गमन करता है इसीप्रकार  
ज्ञानी भी—विषयोंमें प्रीतिको त्यागकर अपने  
स्वरूपमें विचरता है ॥ ६२ ॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं  
विशेन्मुनिः ॥ जले जलं वियद्यो-  
स्मि तेजस्तेजसि वा यथा ॥ ५३ ॥

भा०—अब ज्ञानीकी विधेय—कैवल्यमुक्तिका  
वर्णन करते हैं कि, देह आदि उपाधियोंके लय  
( नाश ) होनेसे वेदान्तका मनन करनेवाला मुनि  
पृथिवी आदि विशेषोंसे रहित व्यापकरूप विष्णु  
( परब्रह्म ) में इसप्रकार प्रविष्ट होता है—अर्थात्  
परब्रह्मरूप होजाता है जैसे नदीका जल समुद्रके  
जलमें दीपक आदिका तेज अग्निमें और घटका  
आकाश महान् आकाशमें प्रविष्ट होजाता है

अर्थात् जैसे जल आदिमें मिले जल आदि एकरूप होजाते हैं—इसीप्रकार परब्रह्ममें मिला जीवात्मा परब्रह्मरूप ही होजाता है—भिन्नरूप नहीं होता ॥५३॥

यद्युभान्नापरो लाभो यत्सुखान्ना-  
परं सुखम् ॥ यज्ञानान्नापरं ज्ञानं  
तद्व्यत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

भा०—अब आठ श्लोकसे उस परब्रह्मका निरूपण करते हैं—विदेह मुक्तिमें जिसकी प्राप्ति होतीहै कि, जिस परब्रह्मके—लाभ—अर्थात् प्राप्तिसे—दूसरा लाभ नहीं अर्थात् परमपुरुषार्थरूप उस लाभमें संपूर्ण जगत्के लाभ अन्तर्गत हैं—और जिसके सुखसे दूसरा सुख नहीं—क्योंकि, सर्वोत्तम उस सुखमें जगत्के तुच्छ सुख अन्तर्गत होजाते हैं—और जिसके ज्ञानसे उत्तम दूसरा ज्ञान नहीं अर्थात् मोक्षका हेतु होनेसे ब्रह्मज्ञा-

न ही—अत्यन्त श्रेष्ठ है—उसको ही ब्रह्मस्वरूप—  
निश्चय करै ॥ ५४ ॥

यद्वान परं दृश्यं यद्गृत्वा न  
पुनर्भवः ॥ यज्ञात्वा न परं ज्ञानं  
तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

भा०—जिस ब्रह्मको देखकर—दूसरा पदार्थ देख-  
ने योग्य नहीं—क्योंकि, अधिष्ठानरूप ब्रह्मके साक्षा-  
त्कारसे ब्रह्ममें कलिपत संपूर्ण जगत् का साक्षा-  
त्कार हो जाता है—और जिस ब्रह्मरूप होनेसे—  
दूसरा—होना नहीं—अर्थात्—फिर संसारमें जन्म  
नहीं होता है—सोई गीतामें लिखा है कि,  
जिस ब्रह्ममें—जाकर—फिर निवृत्त नहीं होते वह  
मेरा—सर्वोत्तम धाम है—और जिसको जानकर  
दूसरा ज्ञान नहीं क्योंकि, कारणरूप ब्रह्मको जा-

---

१ यद्गृत्वा न निवर्तन्ते तद्वाम परमं मम ॥

नकर—कारणसे भिन्न कार्यकी सत्ता—नहीं रहती  
अर्थात् कारणके ज्ञानसे समस्तकार्य जाना जाता  
है उसको—ब्रह्म—निश्चय करै अर्थात् जानै ॥५५॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानन्द-  
मद्वयम् ॥ अनन्तं नित्यमेकं य-  
त्तद्व्यत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, विदेहमुक्तिकी अव-  
स्थामें—जिस ब्रह्मको तत्त्ववेत्ता प्राप्त होता है—वह  
परिच्छन्न है वा अपरिच्छन्न अर्थात्—अव्यापक है  
वा व्यापक—यदि—परिच्छन्न है तो नाशमान् होनेसे  
परमपुरुषार्थ—सिद्ध न होगा—और अपरिच्छन्न है  
तो सर्वत्र विद्यमान् होनेसे उसकी प्राप्ति न बनैगी—  
इस शंकाके उत्तरमें—परिपूर्ण—नित्य—आनन्दरूप ब्रह्म—  
का वर्णनकरते हैं कि, जो सच्चिदानन्द ब्रह्म—तिर्यक्—  
अर्थात्—पूर्व—पश्चिम—उत्तर—दक्षिण—और— ऊपर  
नीचे—पूर्ण है—और देशकाल—वस्तुके—परिच्छेदसे

रहित है—और—नित्य ( सत्य ) और सजातीय—  
विजातीय—स्वगत—तीनों भेदोंसे रहित है—उस  
ब्रह्मका मुमुक्षु पुरुष—निश्चय करै ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांते ल-  
क्ष्यतेऽव्ययम् ॥ अखंडानंदमे-  
कंयत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

भा०—आत्मासे भिन्नकी व्यावृत्ति ( निषेध )  
रूपसे—जो ब्रह्म-अविनाशीरूपसे—तत्त्वमसि आदि  
महावाक्योंके द्वारा—लखाजाता है—और जो  
अखण्डआनंद—एक—सुखरूप है—उसको मुमुक्षु  
पुरुष ब्रह्म जानै ॥ ५७ ॥

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदल-  
वाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्यास्तारतम्येन  
भवत्यानंदिनोऽखिलाः ॥ ५८ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, ब्रह्मा इन्द्र आदि भी

देवता आनन्दके—भोक्ता शास्त्रमें—कहे हैं—तो ब्रह्म-  
को ही सर्वोत्तम आनन्दरूप कैसे कहते हो—सो—  
ठीक नहीं—क्योंकि, ब्रह्मा आदिकोंको जो  
आनन्द है वह भी ब्रह्मानन्दका लेश है—उससे परे  
कोई आनन्द नहीं इस बातका वर्णन करते हैं कि,  
उस अखण्डानन्दरूप ब्रह्मानन्दके लेशके आश्रय  
होकर ब्रह्मा आदि संपूर्ण देवता-तारतम्यसे-अर्थात्  
अपने अपने पुण्यके अनुसार न्यूनाधिक-भावसे  
आनन्दवाले होते हैं अर्थात् उस अपरिच्छिन्न ब्रह्म  
का जो आनन्द उसका ही अंश ब्रह्मा आदि देवता-  
ओंके आनन्दमें झलकता है—और ब्रह्मानन्दकी  
अपेक्षा उनका आनन्द क्षुद्र प्रतीत होता है—अतएव  
ब्रह्मानन्दसे परे कोई आनन्द नहीं ॥५८ ॥

तयुक्तमाखिलं वस्तु व्यवहारस्त-  
दान्वितः ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म  
क्षीरे सर्पिरवाखिले ॥ ५९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, वह आनन्दरूप  
ब्रह्म—कहाँ रहताहै जिसका लेश ब्रह्मा आदिके  
आनन्दमें है—इस शंकाके उत्तरमें सर्वव्यापी ब्रह्मको  
दृष्टान्तके द्वारा देशकालसे रहित वर्णन करते  
हैं—कि, तिस—सच्चिदानन्दरूपसे घट—पट आदि  
संपूर्ण—वस्तु युक्तहैं—अर्थात् घट पट आदि संपूर्ण  
पदार्थ प्रकाशित होते हैं—और वचन ग्रहण गमन  
त्याग आनंद आदि संपूर्ण व्यवहार उस ब्रह्मसेही  
युक्त( सिद्ध ) हैं—सोई गीतामें लिखा है कि,  
संपूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक और संपूर्ण  
इन्द्रियोंसे रहित वह ब्रह्महै—तिससे ब्रह्म संपूर्ण  
वस्तुओंमें इसप्रकार व्यापक है जैसे संपूर्ण दूधमें  
घृत व्यापक होकर रहताहै ॥ ५९ ॥

अनण्वस्थूलमहस्वमदीर्घमजम-

---

१ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

व्ययम् ॥ अरूपगुणवर्णरूपं  
तद्व्यत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

भा०—इसप्रकार प्रपञ्चमें व्यापक भी परमात्माको असंग होनेसे प्रपञ्चके धर्मोंमें स्पर्शका अभाव वर्णन करते हैं—आत्मा अणुरूप नहीं अर्थात् सूक्ष्मरूप नहीं और श्रुतिमें जो आत्माको अणुरूप कहाहै—वह इसलिये है कि, आत्मा जाननेके अयोग्यहै—अर्थात् जाननेको कठिनहै— और आत्मा स्थूल (महान्) नहीं—क्योंकि, जिन घट पटआदि पदार्थोंमें महान् बुद्धि हो तो वे अनित्य हैं और श्रुतिमें जो आत्माको महान्से महान् कहाहै वह सबके अधिष्ठान आत्माकी श्रेष्ठताके तात्पर्यसे है कुछ महान् पदका परिमाण अर्थ नहीं और आत्मा हस्त और दीर्घ परिमाणसे रहितहै और अज अव्यय अर्थात् जन्म और

मरणसे रहित है और रूप-गुण-ब्रह्मण आदि  
वर्णोंसे रहित है वह ब्रह्म है ऐसा मुमुक्षु पुरुष  
निश्चय करै ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽकादिर्भास्यैर्यत्तु  
न भास्यते ॥ येन सर्वमिदं भाति  
तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६१ ॥

भाषार्थ—जिस ब्रह्मकी—भासा ( तेज ) से—सूर्य  
आदिका प्रकाश होता है—और प्रकाश करने योग्य  
सूर्य आदि जिस ब्रह्मको प्रकाश नहीं करसकते—  
और जिससे यह संपूर्ण जगत् प्रकाशित होता है—  
वह ब्रह्म है—ऐसा निश्चय मुमुक्षु पुरुष करै—अर्थात्  
प्रकाश करनेवाले सूर्य आदिका भी प्रकाशक—  
ब्रह्मको समझे ॥ ६१ ॥

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्न-

खिलं जगत् ॥ ब्रह्म प्रकाशते वहि-  
प्रतपायसपिंडवत् ॥ ६२ ॥

भा०—इसप्रकार विदेह—कैवल्यमें स्थितिको कहकर—परम पुरुषार्थके ( मोक्ष ) तत्त्ववेत्ताके—निश्चयको कहते हैं—पूर्वोक्त ब्रह्म—ब्रह्मरूपसे जगत्के बाहर—भीतर व्यापक होकर—संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता हुआ स्वयंभी—इसप्रकार प्रकाशता है जैसे—अग्निसे तपायमान—लोहके—पिण्डमें—सर्वत्र व्याप्त होकर अग्नि—प्रकाशित होता है ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न  
किंचन ॥ ब्रह्मान्यद्वाति चेन्मि-  
थ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६३ ॥

भा०—ब्रह्म जगत्से विलक्षण है—अर्थात्—जड-

मिथ्या और दुःखरूप जगतकी अपेक्षा सञ्चित  
 आनन्दरूप ब्रह्म भिन्न है—और ब्रह्मसे अन्य कुछ भी  
 नहीं है और जो ब्रह्मसे भिन्न—घट पट आदि पदार्थ  
 प्रतीत होते हैं वे—इसप्रकार मिथ्या हैं जैसे—मरु-  
 देशके रेतमें—मरीचिका ( अर्थात् जलके कण—  
 अथवा तेजका पुंज ) प्रतीत होताहै—वास्तवमें  
 ब्रह्मही सत्यहै उससे भिन्न सब मिथ्या है ॥ ६३ ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न  
 तद्वेत ॥ तत्त्वज्ञानाद्य तद्ब्रह्म  
 सञ्चिदानन्दमद्यम ॥ ६४ ॥

भा०—फिर भी पूर्वोक्तका ही प्रत्यक्ष—स्वरूपसे  
 वर्णन करते हैं—कि, ब्रह्मसे भिन्न जो कुछ दीखताहै  
 वा—कानोंसे सुना जाताहै—और मनसे स्मरण  
 किया जाताहै वह सब ब्रह्मसे भिन्न नहीं है—और  
 तत्त्वज्ञानसे वह ब्रह्म सत् चित्—आनन्द—अद्वैत—  
 स्वरूपहै ॥ ६४ ॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्नि-  
रीक्षते ॥ अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भा-  
स्विंतं भानुमध्वत् ॥ ६५ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, सच्चिदानन्द ब्रह्म—  
सर्वव्यापक है—तो सर्वत्र क्यों नहीं दीखता—सो ठीक  
नहीं—सर्वव्यापी भी ब्रह्मतत्त्व ज्ञानियों को दीखता है  
अज्ञानियों को नहीं कि, सर्वत्र व्यापक भी सत  
चित्—आनन्द—रूप आत्माको वही पुरुष देखता है,  
जिसके ज्ञानरूपी नेत्र विद्यमान हैं—और जो अज्ञान  
चक्षु है अर्थात् जिसकी दृष्टि अज्ञान से आवृत है  
वह पुरुष अपने सच्चिदानन्दरूप आत्माको इस-  
प्रकार नहीं देखता (जानता) है जैसे प्रकाश-  
मान् सूर्य को नेत्रहीन (अंधा) पुरुष नहीं  
देखता है ॥ ६५ ॥

श्रवणादिभिरुद्धीसो ज्ञानाग्निपरि-

तापितः ॥ जीवः सर्वमलान्मुक्तः  
स्वर्णवद्वयोतते स्वयम् ॥ ६६ ॥

भा०—कदाचित कहोकि ज्ञानचक्षु पुरुषोंका विवेकसे देह इंद्रियोंमें अध्यासरूप मलके दूर होनेपरभी पूर्व जन्मके अध्याससे संसारकी वासनाके वशीभूत होकर फिर भी अहं मनुष्यः ( मैं मनुष्य हूं ) ऐसा देहरूप बंधन प्रतीत होता है तो आत्मस्वरूपमें स्थिति मुक्ति कैसी होसकतीहै इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिसे भली प्रकार प्रज्वलित जो ज्ञानरूप अग्नि तिससे परितापित ( युक्त ) जो जीव है वह संपूर्ण मलोंको त्यागकर अर्थात् अज्ञानसे निवृत्त होकर सुवर्णके समान स्वयंही प्रकाशरूप होता है भावार्थ यह है कि, सच्चिदानन्दरूप होकर प्रकाश होनेपर मैं मनुष्य हूं यह अध्यास फिर नहीं होता है ॥ ६६ ॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभा-  
नुस्तमोऽपहत् ॥ सर्वव्यापी सर्व-  
धारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, इस प्रकार शुद्धहुए  
आत्माका क्या रूप होता है और कहाँ प्रकट होता  
है और किसको प्रकाशता है इस शंकाका उत्तर  
देते हैं कि, इस प्रकार जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञान-  
से शुद्ध हुआ निर्मल बोधरूप सूर्य ( आत्मा )  
हृदयाकाशमें उदय होकर अंधकाररूप अन्तः-  
करणके मलको हरता ( नाशता ) है और सबका  
प्रकाश करता है आप स्वयंप्रकाशरूप है कदा-  
चित् कहो कि हृदयाकाशको परिच्छन्न(नाशवान्)  
होनेसे आत्मा भी तिसके संग परिच्छन्न होजायगा  
इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, आत्मा सर्वव्यापी  
है अर्थात् जगत्में पूर्ण है और सबका आधार है

अर्थात् अज्ञानके कार्य जगत्का आधिष्ठान है तात्पर्य यह है कि भ्रमरूप हृदयाकाश व्यापकरूप आत्माका नाशक नहीं होसकता ॥ ६७ ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शी-  
तादिहन्त्रित्यसुखं निरंजनम् ॥ यः  
स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः स  
सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छं-  
कराचार्यकृत आत्मबोधः समाप्तः ॥

भा०—अब आत्मतत्त्वज्ञानको तीर्थरूप वर्णन करते हैं और कर्म और सब तीर्थ और सब देवता-ओंकी सेवाका जो फल है उसकी अपेक्षा उत्तम फल आत्मज्ञानरूप तीर्थका है क्योंकि, आत्मा-की सेवासे संपूर्ण सेवाओंकी आकांक्षा शांत हो-जाती है—कदाचित् कहो कि तत्त्वज्ञानी भी स्वाभा-

विक पापोंके दूर करनेकेलिये प्रयागआदि  
 तीर्थोंका सेवन करते हैं तो आत्मज्ञानको स्वर्णके  
 समान प्रकाशमान् और संपूर्ण मलसे रहित  
 कैसे कहते हो इस शंकाके उत्तरमें आत्म-  
 रूप तीर्थमें स्नानके कर्ताको कुछ भी कर्तव्य  
 नहीं इसका वर्णन करते हैं कि, दिशा ( पूर्व आदि )  
 और देश ( कुरु आदि ) काल ( भूत आदि ) इन  
 सबकी अपेक्षासे रहित और सर्वत्र व्यापकरूप—  
 और शीत आदिके नाशक अर्थात् शीत उष्ण  
 आदि द्वंद्वके नाशक और सर्वदा सुखरूप और  
 निरंजन अर्थात् मायाके कार्य जगतरूप मलसे  
 रहित जो आत्मरूप तीर्थ उसको जो मनुष्य  
 क्रिया ( कर्म ) ओंसे रहित होकर भजता है  
 अर्थात् सब कर्मोंको त्यागकर जो आत्मतीर्थके  
 विचारमें तत्पर रहता है सर्वमें व्यापक हुआ और

सबका ज्ञाता वह अमृतरूप होजाता है अर्थात्  
 जो आत्मतत्त्वका श्रवण मनन निदिध्यासन आ-  
 दिके द्वारा विचार करते हैं वे सबके ज्ञाता हैं और  
 जो जन्ममरणरूप संसारके अभावका फल उन-  
 को मिलता है वह किसी तीर्थाटन आदि कर्म कर-  
 नेवालेको नहीं मिलता है अतएव मुमुक्षु पुरु-  
 षोंको आत्मतीर्थकी सेवा करना अत्यंत आव-  
 श्यकहै ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमिच्छुं-  
 कराचार्यकृतात्मबोधस्य पंडितमिहिरचंद्र-  
 रुतभाषाविवृतिः समाप्ता ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

“श्रीवेङ्कटेश्वर” स्टीम्-प्रेस बंबई.

# ऋग्यपुस्तके ( वेदान्तग्रंथाः )

---

नाम.

की. रु. आ.

**ब्रह्मसूत्रम्—( शारीरक ) व्यासप्रणीतः शंक-  
राचार्यकृत शांकरभाष्य और गोविन्दा-  
नंदकृत रत्नप्रभाटीकासहित व्यासाधि-  
करणमाला और शांडिल्यकृत भक्ति-  
सूत्र स्वप्रेश्वराचार्यकृत भाष्य समेत  
छपता है।**

**ब्रह्मसूत्र—( शारीरक ) “ वेदान्तदर्शन ”  
प्रभूदयालकृत वेदान्ततत्त्वप्रकाश भाषा-  
भाष्यसमेत मुमुक्षुओंको अतिसुगमतासे  
सुबोध ज्ञानोपयोगी बहुत सरल  
भाषामें ... ... ... ... ४ )**

**ब्रह्मसूत्र—( वेदान्तदर्शन ) सरल भाषाटी-  
कामें भाष्यानुसार ... ... ... १। )**

- वेदान्तपरिभाषा—शिखामणिटीका और  
मणिप्रभाटीका सहित ... ... २॥)
- वेदान्तपरिभाषा—अर्थदीपिका टीका समेत १)
- वेदान्तपरिभाषा—साधु गोविन्दासिंहकृत  
अत्युत्तम भाषाटीकासमेत ... ... १=)
- वेदान्तसार—संस्कृतमूल और संस्कृत  
टीका व भाषाटीकासमेत इसमें संपूर्ण  
वेदान्तका तत्वरूपसार वर्णित है ॥॥)
- वेदान्तसंज्ञा—भाषाटीकासमेत इस छोटेसे  
ग्रंथके अभ्याससे वेदान्तकी संज्ञादि  
प्रक्रिया जाननेसे पंचदशी आदि बडे  
ग्रंथोंको सुगमतासे समझ सकेंगे ... ।=)
- वेदस्तुति—श्रीयुत बाबू सीतारामजीकृत  
भाषाटीकासमेत श्रीमद्भागवतान्तर्गत  
दशमस्कंधोत्तरार्धके ८७ वें अध्यायमें

श्रीकृष्ण भगवान्‌ने श्रुतदेव ब्राह्मण  
और राजाबहुलाश्वको सन्मार्गनाम वेद  
मार्गका उपदेश किया है अर्थात् इस  
श्रुतिमें समस्तवेद ब्रह्मप्रतिपादन किया  
है ... .... ... ... ... ॥ J

वेदान्त ग्रंथपंचकम्—( वाक्यप्रदीपः वाक्य-  
सुधारसः हस्तामलकः निर्वाणपंचकम्  
मनीषापंचकम् ) यह पांचोग्रंथ अवश्य  
विचारने योग्य हैं ... ... ... ॥ J

वैराग्यभास्कर—श्रीस्वामि गोपालदास विर-  
चित स्वकृत संस्कृत कारिका और  
भाषाटीकासमेत इसमें वैराग्यभेदादि  
संन्यासधर्म निषिद्धान्त्यागात्मकधर्म  
और संकीर्ण धर्मादि वर्णन हैं. ... ॥ J

वेदस्तुति—अन्वितार्थप्रकाशिकाख्य टीका  
समेत ... ... ... ... ॥ J

अपरोक्षानुभूति—श्रीशंकराचार्यकृत और  
स्वामि विद्यारण्य मुनिकृत दीपिकास-  
हित और पंडितरामस्वरूपजीकृत भा-  
षाटीकासमेत जिसमें संक्षेपसे वेदान्त-  
प्रक्रियाका सरल रीतिसे वर्णन है ... ॥=J

अष्टावक्रगीता—भाषाटीकासमेत. श्रीअष्टा-  
वक्रमुनि प्रणीत गुरुशिष्यसंवादमें ब्रह्म-  
विद्याजाननेका अतिसरल सुगमोपाय । J

पंचदशगीता—भाषाटीकासमेत जिसमें श्री-  
महाभारतान्तर्गत काश्यपगीता शौनक-  
गीता अष्टावक्रगीता अध्याय ४ नहुषगी-  
ता अध्याय २ सरस्वतीगीता युधिष्ठिर-  
गीता अध्याय ४ बकगीता. धर्मव्याध-  
गीता श्रीकृष्णगीतादिकका एकत्र  
संग्रहहै     ...     ...     ...     ... ॥III J

अवधूतगीता—श्रीमत्परमयोगिवर दत्तात्रेय  
प्रणीता—रेशमी गुटका ... ... I=J

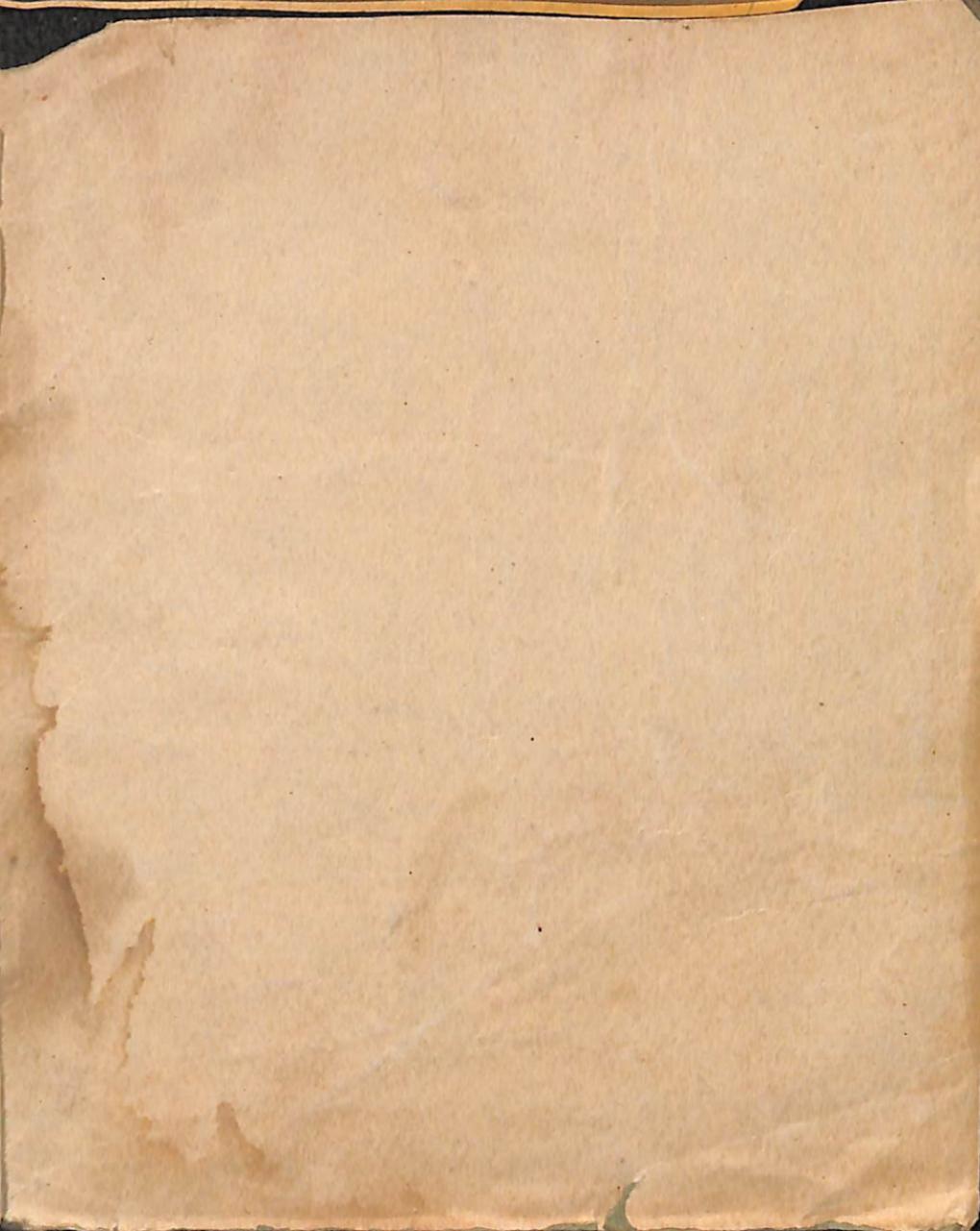
देवीगीता—भाषाटीकासहित ( श्रीदेवीभाग-  
वतान्तर्गत ) शाक्तलोगोंको पाठकरने  
योग्य ... ... ... ... II=J

शिवगीता पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत-भाषा  
टीकासहित ( पञ्चपुराणोक्त ) १६  
अध्यायमें श्रीमद्भगवान् रामचंद्रजीको  
शिवजीने ज्ञानोपदेश किया है ... II=J

गणेशगीता पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत-  
भाषाटीकासहित ( गणेशपुराणोक्त : )  
गाणपत्यको अवस्थ्य पाठ करने  
योग्य... ... ... ... I=J

कपिलगीता—भाषाटीकासहित श्रीमद्भाग-  
वतान्तर्गत श्रीभगवान् कपिलदेवजीने

अपनी माता देवहूतिको संपूर्ण ज्ञानो-  
 पदेश किया है ... ... ... १।  
 सिद्धान्तचन्द्रिका-( वेदान्त ) ... ... ॥१॥  
 पंचदशी सटीक-पं० रामकृष्णकी  
 तत्त्वविवेकव्याख्या टीका सहित .. २।  
 पंचदशी-पं० मिहिरचंद्र कृत अत्युत्तम  
 भाषाटीकासहित जिसमें-तत्त्वविवेक,  
 दैवविवेक, महावाक्यविवेक, कूटस्थ  
 दीप, नाटकदीप, योगानन्द, आत्मा-  
 नन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषया-  
 नंदादिमें वेदान्तमार्ग दर्शाया है ... ३।  
 पंचदशी-केवल भाषामात्र आत्मस्वरूपजी  
 कृत उपरोक्त विषयानुसार ... ... ३।  
 श्रीरामगीता-भाषाटीकासहित, पदप्रका-  
 शिका अनुवाद समुच्चय और विषमप-  
 दीके सहित ... ... ... ४।



**“श्रीविष्णुटेश्वर” छापाखानेकी परमोपयोगी  
स्वच्छ शुद्ध और सहस्री पुस्तकें।**

यह विषय आज २५।३० वर्ष से अधिक हुआ भारतवर्षमें प्रसिद्ध है कि, इस छापाखानेकी छपी हुई पुस्तकें सर्वोत्तम और सुन्दर प्रतीत तथा प्रमाणित हुई हैं सो इस यन्त्रालय में प्रत्येक विषय की पुस्तकें जैसे—वैदिक, वेदान्त, पुराण, धर्मशास्त्र, न्याय, मीमांसा, उन्द्र, न्योतिष, काव्य, अलंकार, चम्पू, नाटक, कोष, वैद्यक, साम्पदागिक तथा स्तोत्रादि संस्कृत और हिन्दी भाषाके प्रत्येक अवसर पर विकीके अर्थ तैयार रहते हैं। शुद्धता स्वच्छता तथा कागजकी उत्तमता और जिन्द की बँधाई देख भरमें विस्थात है। इतनी उत्तमता होनेपर भी दाम बहुत ही सर्ते रक्खे गये हैं और कभी जूनभी पृथक् काट दियाजाता है। ऐसी सरक्षा पाठकों को मिलना असंभव है संस्कृत तथा हिन्दीके रसिकोंको अवश्य अपनी २ आवश्यकताउत्तम, सहस्र और शुद्ध भाक दूसरी बगड़ मिलना असंभव है ‘सूचीपत्र’ में गाड़ेखो ॥

**सेमराज श्रीकृष्णदास,**  
**“श्रीविष्णुटेश्वर” छापाखाना—सेतवाही—बम्बई**